

# जिनभाषित

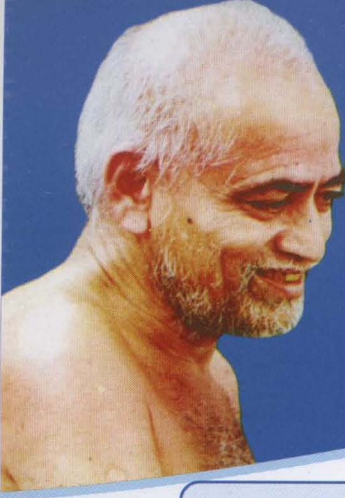
वीर निर्वाण सं. 2535



कुम्भोज बाहुबली (जिला कोल्हापुर, महाराष्ट्र)  
में विराजमान अतिप्राचीन जिनप्रतिमा

आश्विन, वि.सं. 2065

अक्टूबर, 2008



# सही पुरुषार्थ

• आचार्य श्री विद्यासागर जी

माँ धरती और बेटी मिट्टी के संवाद के माध्यम से सही पुरुषार्थ का मार्मिक विश्लेषण इन काव्यपंक्तियों में किया गया है।  
-सम्पादक

किसी कार्य को सम्पन्न करते समय  
अनुकूलता की प्रतीक्षा करना  
सही पुरुषार्थ नहीं है,  
कारण कि  
वह सब कुछ अभी  
राग की भूमिका में ही घट रहा है,  
और इससे  
गति में शिथिलता आती है।  
इसी भाँति  
प्रतिकूलता का प्रतिकार करना भी  
प्रकारान्तर से  
द्वेष को आहूत करना है,  
और इससे  
मति में कलिलता आती है।

कभी-कभी  
गति या प्रगति के अभाव में  
आशा के पद ठण्डे पड़ते हैं,  
धृति, साहस, उत्साह भी  
आह भरते हैं,  
मन खिन्न होता है  
किन्तु  
यह सब आस्थावान् पुरुष को  
अभिशाप नहीं,  
वरन्  
वरदान ही सिद्ध होते हैं  
जो यमी, दमी  
हरदम उद्यमी है।

और, सुनो!  
मीठे दही से ही नहीं,  
खट्टे से भी  
समुचित मन्थन हो  
नवनीत का लाभ अवश्य होता है।  
इससे यही फलित हुआ  
कि  
संघर्षमय जीवन का  
उपसंहार  
नियमरूप से  
हर्षमय होता है, धन्य!  
इसीलिए तो  
बार-बार स्मृति दिलाती हूँ  
कि

टालने में नहीं  
सती-सन्तों की  
आज्ञा पालने में ही  
'पूत का लक्षण पालने में'  
यह सुक्ति  
चरितार्थ होती है, बेटा!  
और  
कुछ क्षणों तक  
मीन छा जाता है।

मूकमाटी ( पृष्ठ १३-१४ ) से साभार

# जिनभाषित

## सम्पादक

प्रो. रतनचन्द्र जैन



## कार्यालय

ए/2, मानसरोवर, शाहपुरा  
भोपाल- 462 039 (म.प्र.)  
फोन नं. 0755-2424666



## सहयोगी सम्पादक

पं. मूलचन्द्र लुहाड़िया, मदनगंज किशनगढ़  
पं. रतनलाल बैनाड़ा, आगरा  
डॉ. शीतलचन्द्र जैन, जयपुर  
डॉ. श्रेयांस कुमार जैन, बड़ौत  
प्रो. वृषभ प्रसाद जैन, लखनऊ  
डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती', बुरहानपुर



## शिरोमणि संरक्षक

श्री रतनलाल कँवरलाल पाटनी  
(मे. आर.के.मार्बल)  
किशनगढ़ (राज.)  
श्री गणेश कुमार राणा, जयपुर



## प्रकाशक

सर्वोदय जैन विद्यापीठ  
1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी,  
आगरा-282 002 (उ.प्र.)  
फोन : 0562-2851428, 2852278



## सदस्यता शुल्क

शिरोमणि संरक्षक	5,00,000 रु.
परम संरक्षक	51,000 रु.
संरक्षक	5,000 रु.
आजीवन	1100 रु.
वार्षिक	150 रु.
एक प्रति	15 रु.

सदस्यता शुल्क प्रकाशक को भेजें।

## अन्तस्तत्त्व

पृष्ठ

- ◆ काव्य : सही पुरुषार्थ आ.पृ. 2
- : आचार्य श्री विद्यासागर जी
- ◆ मुनि श्री योगसागर जी की कविताएँ आ.पृ. 4
- ◆ सम्पादकीय : सम्मदशिखर में सेवायतन 2
- ◆ प्रवचन
- सुख कहाँ है? : आचार्य श्री विद्यासागर जी 3
- वास्तविक स्वतन्त्रता की आवश्यकता 6
- : मुनिपुङ्गव श्री सुधासागर जी
- ◆ लेख
- एक ही भाव से दो कार्य कैसे? 8
- : मुनि श्री प्रमाणसागर जी
- जिनेन्द्रदर्शन एवं पूजन की विशेषता 9
- : पं० सदासुखदास जी काशलीवाल
- असंख्यात-गुणश्रेणी-निर्जरा : सिद्धार्थकुमार जैन 11
- तीर्थ की संकल्पना और उनका विकास 16
- : प्रो. वृषभप्रसाद जैन
- अष्टपाहुड में बिम्बविधान : प्रो. रतनचन्द्र जैन 19
- जैन एकता के लिए ठोस एवं प्रभावी प्रयास करें 23
- : सुरेश जैन, आई.ए.एस
- ◆ कविताएँ
- बुन रही मकड़ी --- : मनोज जैन 'मधुर' 24
- ◆ शंका-समाधान : पं० जबाहरलाल जी भीण्डर 25
- ◆ जिज्ञासा-समाधान : पं. रतनलाल बैनाड़ा 27
- ◆ समाचार 5,10,30
- ◆ परिचय : पुलिसनिरीक्षिका जैन युवती --- 31
- ◆ एक विचारणीय पत्र समाज के नाम 32
- ◆ ग्रन्थ समीक्षा आ.पृ 3

लेखक के विचारों से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

'जिनभाषित' से सम्बन्धित समस्त विवादों के लिये न्यायक्षेत्र भोपाल ही मान्य होगा।

## सम्मोदशिखर में सेवायतन

यह परम पावन सिद्ध क्षेत्र सम्मोदशिखर, कि जहाँ से अनंत तीर्थकर एवं अनंतानंत मुनिराजों ने मोक्ष पद प्राप्त किया है, जैन धर्मावलम्बियों का सर्वोच्च तीर्थ है। गत कुछ वर्षों से मधुवन में, पहाड़ के रास्ते में तथा पहाड़ के ऊपर सर्वत्र प्रदूषण एवं गंदगी का साम्राज्य फैला हुआ है। मधुवन में मेन रोड में अतिक्रमियों के द्वारा रोड की चौड़ाई सिकुड़ा दी गई, साथ ही गंदगी तो है ही।

समस्याओं के दो रूप हैं। एक प्रकार की समस्याएँ वे हैं, जो क्षेत्र के विकास से संबंध रखती हैं। दूसरी समस्याएँ क्षेत्र के निवासी आदिवासी लोगों के असंतोष, बेकारी अभावग्रस्तता एवं असहयोग के कारण उत्पन्न हो रही हैं।

इन समस्याओं की ओर प.पू. मुनिराज श्री प्रमाण सागर जी महाराज का ध्यान गया और उन्होंने इनके कारण एवं निवारण पर गंभीर चिंतन किया। जो समस्याएँ क्षेत्र के विकास से संबंध रखती हैं, उनका समाधान राज्य सरकार एवं समाज के संयुक्त प्रयत्नों से ही संभव है। किंतु जो समस्याएँ वहाँ के मूल निवासी आदिवासियों द्वारा उत्पन्न की गई हैं, उनके समाधान के लिए उन आदिवासियों का विश्वास जीतने के लिए उनकी आर्थिक दशा सुधारने के कार्यक्रम संचालित करने होंगे। जो समस्याएँ आदिवासियों के द्वारा उत्पन्न की गई हैं, वे मुख्यतः उनकी दयनीय आर्थिक स्थिति के कारण, उनकी बेकारी के कारण एवं उनके मद्यसेवन आदि व्यसनों के कारण उत्पन्न हुई हैं। आर्थिक विपन्नता, और बेकारी से त्रस्त होकर उन्होंने पहाड़ पर अनेक जगह चाय, पान, नाश्ता आदि की दुकानें लगा ली हैं। इन दुकानों का अस्तित्व विभिन्न यात्रियों को खाने-पीने के लिए प्रेरित करता है और परिणाम स्वरूप उत्पन्न हुई गंदगी से सम्पूर्ण वातावरण प्रदूषित हो रहा है।

प्रसन्नता का विषय है कि पू० मुनिराज श्री की प्रेरणा से उत्साही कार्यकर्ताओं ने 'सेवायतन' के सुंदर नाम से तीर्थराज की पावनता को अक्षुण्ण बनाए रखने के पवित्र उद्देश्य से विभिन्न योजनाओं पर कार्य प्रारंभ कर दिया है। कर्मठ कार्यकर्ताओं ने तीर्थराज के आस-पास बसे 14 गाँवों में सफाई, शिक्षा, चिकित्सा के साधन उपलब्ध कराने एवं मुख्य स्थानों पर आजीविका के लिए उद्योग चालू करने की योजनाएँ बनाई हैं। उन योजनाओं को क्रियान्वित किए जाने के लिए ठोस कदम उठाए जा रहे हैं। इन सेवाकार्यों के परिणाम स्वरूप इस क्षेत्र के आदिवासियों के जीवन में गुणात्मक परिवर्तन आयेगा और वे अवश्य मधुवन और पहाड़ के वातावरण को प्रदूषणमुक्त बनाने में सहयोगी बनेंगे। केवल वातावरण ही प्रदूषणमुक्त नहीं होगा, किंतु आदिवासियों के हृदय भी प्रदूषणमुक्त बन पायेंगे। उनके मन में यात्रियों के प्रति एवं क्षेत्रप्रबंधकों के प्रति प्रेम व स्नेह के भाव जागेंगे और उनमें घृणा एवं ईर्ष्या के आधार पर आर्थिक लाभ प्राप्त करने के प्रदूषित भाव उत्पन्न नहीं होंगे।

सेवायतन के संस्थापक-अध्यक्ष श्री एम० पी० अजमेरा के सक्षम नेतृत्व में अनेक उपयोगी योजनाओं के द्रुत क्रियान्वयन में कोई संदेह नहीं रहा गया है।

हमें यह देखकर प्रसन्नता है कि सेवायतन की बहुउद्देश्यीय एवं बहु उपयोगी योजनाओं को सभी ओर से सराहना प्राप्त हो रही है और आश्चर्यजनक रूप से स्व-प्रेरित पर्याप्त आर्थिक सहयोग प्राप्त हो रहा है।

हमें विश्वास है कि नवोदित संस्था सेवायतन अपने नाम को सार्थक करते हुए तीर्थराज को शीघ्र ही प्रदूषणमुक्त एवं वहाँ के मूल निवासियों को व्यसनमुक्त कर पाने में तथा उनकी आर्थिक स्थिति को सुधारने में आशातीत प्रशंसनीय परिणाम प्राप्त करने में सफल होगी।

मूलचंद लुहाड़िया

## सुख कहाँ है?

आचार्य श्री विद्यासागर जी

नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते।  
चित्त्वभावाय भावाय सर्वभावान्तरच्छिदे॥

यह जीव जिस वस्तु को पहले रुचिपूर्वक सुनता है, उसका रसास्वादन करता है, पीछे उसे छोड़ देता है। तद्विषयक राग के निकल जाने पर किसी वस्तु को छोड़ना कठिन नहीं है। बड़े-बड़े राजा महाराजा पहले जिन वस्तुओं के एकत्रित करने में पूर्ण शक्ति लगा देते हैं, पीछे विरक्ति होने पर उन्हें जीर्ण तृण के समान छोड़ देते हैं।

इस जीव ने वस्तु का यथार्थ ज्ञान नहीं किया, इसीलिये इसके कल्याण का मार्ग खुला नहीं है। जीव का स्वभाव है कि वह अन्तरङ्ग से सुख को चाहता है और दुःख से भयभीत होता है। जिसे सुख की चाह और दुःख से भयभीतपना नहीं है, वह अजीव की कोटि में आता है। हमारे भाषण को माईक बड़ी तत्परता से सुनता है, यह हमारा प्रथम श्रोता है। आप दूरवर्ती होने से बाद के श्रोता है, परन्तु शब्दों के ग्रहण करने मात्र से यह जीव नहीं हो गया। क्योंकि इसे सुख की चाह और दुःख से भयभीतपना नहीं है। यह शब्द को ग्रहण करके अपने पास नहीं रखता।

जिस मानव को स्वहित की इच्छा होती है, वह उस ओर प्रयत्न करता है। पूज्यपाद स्वामी ने लिखा है- 'कश्चिद् भव्यः प्रत्यासन्ननिष्ठः प्रज्ञावान् स्वहित-मुपलिप्सु' कोई निकट संसारी प्रज्ञावान् भव्यप्राणी आत्महित की चाह करता हुआ निर्ग्रन्थ आचार्य से विनयपूर्वक पूछता है-भगवन्! आत्मा के लिये हितकारी क्या है? आचार्य उत्तर देते हैं- 'मोक्ष इति, मोक्ष ही हितकारी है, जे त्रिभुवन में जीव अनंत, सुख चाहें दुखतें भयवंत।'

तीन लोक में जितने जीव हैं, सब सुख चाहते हैं और दुःख से भयभीत रहते हैं। इतना होने पर भी यह जीव सुख कहाँ है? इसका निर्णय नहीं कर सका है। षट्कारकों में अधिकरण कारक बढ़ा महत्त्वपूर्ण है। सुख का अधिकरण आत्मा है। आत्मा में ही उसका आवास है। भोगोपभोग के पदार्थों में मात्र आभास है। सुख आत्मा का अनुजीवी गुण है। वह जब भी प्रगट होगा तब आत्मा में होगा अन्य पदार्थों में नहीं। अज्ञानी

प्राणी उस सुख को आत्मा में न खोजकर अन्यत्र खोजता है।

एक किसान ने खेत में कुआँ खुदवाना चाहा। किसी ज्योतिषी से उसने पूछा कि महाराज! आप बताइये कुआँ कहाँ खुदवावें, पानी निकलेगा या नहीं? ज्योतिषी ने कहा मैं बता सकता हूँ छत्तीस फुट पर पानी है। परन्तु पाँच हजार रुपये लूँगा। किसान मंजूर हो गया। उसने पाँच हजार रुपये ज्योतिषी को दे दिये। ज्योतिषी ने तन्त्र-मन्त्र कर स्थान बतला दिया-अपने खेत के दक्षिण दिशा में कुआँ खोदो। परन्तु किसान ने उस स्थान पर कुआँ न खोदकर दक्षिण दिशा के कोण में कुआँ खोदा। पानी नहीं निकला, तो ज्योतिषी को उलाहना देने गया- महाराज! आपने पाँच हजार रुपये ले लिये, परन्तु पानी निकला नहीं। ज्योतिषी ने कहा कि ऐसा हो नहीं सकता। किसान बोला-महाराज चलकर देख लो। महाराज ने जाकर देखा तो कहा भाई, हमने जहाँ बतलाया था वहाँ तुमने कहाँ खोदा। वहाँ खोदो तो पानी मिले। विवश हो किसान ने वहाँ पर खोदा, तो पानी का अथाह स्रोत निकल आया।

यह तो दृष्टान्त है। दृष्टान्त यह है कि सुख का अधिकरण आत्मा है, भोगोपभोग पदार्थ नहीं, अतः उन्हें छोड़ आत्मा में, उसकी खोज जिसने की है वह अवश्य ही सुख को प्राप्त हुआ है। परन्तु उसके फल से वंचित रहता है- पदार्थ ज्ञान के फल से वह दूर रहता है। वीरसेन स्वामी ने लिखा है 'गाणस्स फलमुवेक्खा', अर्थात् ज्ञान का फल उपेक्षा है। उपेक्षा का अर्थ होता है रागद्वेष की अनुत्पत्ति। पदार्थ को जानना तो आत्मा का स्वभाव है, परन्तु उसमें रागद्वेष करना स्वभाव नहीं है। इस गलती को यह जीव अनादिकाल से करता चला जा रहा है और जब तक करता चला जायगा, तब तक ज्ञान के फल को प्राप्त नहीं कर सकता।

हाँ तो मैं कह रहा था सुख का आवास आत्मा में है, भोग सामग्री में नहीं। एक व्यक्ति नौकरी का काम करता था। रोज तो दाल रोटी खाता था, पर एक दिन पत्नी से बोला कि अब तो अपने पास पैसे इकट्ठे हो गये हैं, इसलिये कुछ अच्छे व्यंजन बनाये जावें। पति की इच्छा देख, पत्नी ने बढ़िया रसगुल्ला बनाये। ताजे

ताजे रसगुल्ला वह खाना ही चाहता था कि डाकिया (पोस्टमैन) आकर कहता है बाबू! आपका तार है। पत्नी ने तार लेकर पति के हाथ में दिया। पति ने तार खोला तो उसमें देखा कि पिता जी सीरियस हैं जल्दी आओ, तार पढ़ते ही वह रसगुल्ला खाना भूल गया। थाली पर बैठा था इसलिए खाये तो सही, परन्तु उनमें रस नहीं था, स्वाद नहीं था, जरा विचार कर देखो वह रसानुभूति आत्मा की थी या रसगुल्ला की। रस का आनन्द का आवास आत्मा में था रसगुल्ला में नहीं।

एक गरीब आदमी बाजरे की रोटी खा रहा था, डाकिया कहता है बाबूजी आपका मनिआर्डर आया है। मनिआर्डर की बात सुनकर प्रफुल्लच चित्त हो गया। बाजरा की रोटी भी उसे अच्छी लगने लगी। क्यों? मनोवृत्ति बदल गयी, न रसगुल्ला में सुख का आवास था और न बाजरा की रोटी में दुःख का निवास था। सुख और दुःख तो आत्मा में थे। वहीं उनकी खोज करना अच्छा है। जिस प्रकार मलमा हटाये बिना पानी का स्रोत नहीं मिलता उसी प्रकार विकारीभाव रूप मलमा हटाये बिना सहज सुख का स्रोत नहीं मिल सकता है। पानी के स्रोत बाहर से थोड़े ही आते हैं जमीन के अन्दर ही रहते हैं परन्तु मलमा से तिरोहित है, मलमा हटाये बिना उनका पाना कठिन है। इसी तरह सहज-सुख आत्मा के प्रत्येक प्रदेश में व्याप्त है, परन्तु रागद्वेष का मलमा उसके ऊपर पड़ा हुआ है। उसे अलग करने की बात है।

‘बीज राख फल भीग वे ज्यों किसान जग माँहि, जिस प्रकार किसान बीज की रक्षा करके ही उसके फलका उपभोग करता है बीज को खाकर नहीं, इसी प्रकार ज्ञानी जीव धर्मभाव को सुरक्षित रखकर ही उसका फल भोगता है।’ उसे नष्ट कर नहीं। परिणामों की गति बड़ी विचित्र है। पद्यपुराण में एक कथा आती है उदयसुन्दर की। वह बड़ा सुन्दर शरीर वाला था। विवाह हुआ, बहू घर आयी। उपरान्त बहू का भाई बहिन को आया, परन्तु उसने भेजने को मना कर दिया, माता ने समझाया, पिता ने समझाया पर वह अपनी हठ पर कायम रहा। नहीं भेजूँगा। बहू के भाई को एक युक्ति सूझी उसने कहा कि आप भी हमारे साथ चलिये, साथ चलने की बात सुनकर बहू को भेजने के लिए तैयार हो गया, बहनोई, साला ओर बहू चले। मार्ग में एक वन खण्ड में भ्रमण करते-करते बहनोई ने एक वृक्ष के नीचे बारह भावना

पढ़ते हुए मुनिराज को देखा- वे पढ़ रहे थे ‘जल पय ज्यों जिय तन मेला, पर भिन्न-भिन्न नहीं मेला’ मुनिराज की सौम्य मुद्रा देख वह निश्चल हो गया, पता चलाकर साले साहब उसके पास पहुँचे। उन्हें लगा कही इन्हें भूत तो नहीं लग गये जो चुपचाप खड़े हैं। बहुत कुछ कहा चलिये भोजन करें परन्तु उसकी ओर से कोई उत्तर नहीं। व्यङ्ग्य कसते साले ने कहा कि क्या मुनि बनना चाहते हो? उसने कहा-मन तो यही कह रहा है। साले को बहनोई की मनोगति का आभास नहीं हुआ। इसलिए उसने कहा अच्छा आप मुनि बन जावें तो मैं भी बन जाऊँ। बहनोई मुनि बन गया, बहू ने सुना तो वह कहता है कि मैं तो पहले ही आर्यिका बनना चाहती थी। परन्तु पिता और भाई ने बलात् गृहस्थी के चक्र में फँसा दिया था, अब मुझे इस चक्र से छुटने का अवसर अनायास मिल गया। तात्पर्य यह है कि यह आर्यिका हो गई और अगत्या साले के मन में भी मोड़ आया अतः वह भी मुनि बन गया। घर पर जब समाचार पहुँचा तब सारा कारोबार ठण्डा पड़ गया।

बहुत ही वैराग्यवर्धक कथा है। सम्यग्दृष्टि जीव के अन्तस्तल में वैराग्य का भाव सदा विद्यमान रहता है। न जाने-यह कब प्रस्फुटित हो जावे। अमृतचन्द्र सूरि ने कहा है-

सम्यग्दृष्टेर्भवति नियतं ज्ञानवैराग्यशक्तिः  
स्वं वस्तुत्वं कलयितुमयं स्वान्यरूपाप्तिमुक्त्या।  
यस्माद् ज्ञात्वा व्यतिकरमिदं तत्त्वतः स्वं परं च  
स्वस्मिन्नास्ते विरमति परात् सर्वतो रागयोगात्॥

सम्यग्दृष्टि में नियम से ज्ञान और वैराग्य की शक्ति होती है क्योंकि यह स्वकीय वस्तुपने को प्राप्त करने के लिए सदा उद्यत रहता है। उसे प्राप्त करने के लिए वह निजकी प्राप्ति और पर का परित्याग करता है। स्वकीय वस्तुत्व को प्राप्त करने का यह एक साधन है। वह परमार्थ से इस संयोग दशा में स्व और पर को जानकर स्व में-अपने ज्ञायक स्वभाव में स्थित होकर बैठता है और पर जो रागभाव है उससे सर्वथा विरत होता है।

इस भूतार्थ को समझे बिना किसी का भूत उतरता नहीं है। भूत-एवंभूत, ऐसा है आत्मा का स्वरूप। ऐसा जाने बिना किसी का भूत, पर में निजत्व बुद्धि का भाव दूर नहीं होता। आज भूतार्थ की चर्चा करनेवालों का भी यह भूत उतरता नहीं है। कहा है “आत्मनि इति अध्यात्म”, आत्मा में ही जो हो वह अध्यात्म है। अध्यात्म

मात्र चर्चा का विषय नहीं है। चर्चा का विषय है, उसे जीवन में आत्मसात् करने की आवश्यकता है।”

जीव की जब अनादिकालीन ममता जावे, तभी समता आती है। पर में ममेदंभाव होना ममता है। जब तक उसका अभाव नहीं किया जाता, तब तक समता-माध्यस्थवृत्ति का होना असम्भव है। इस समता को प्राप्त करने का उपाय भी अमृतचन्द्राचार्य ने बतलाया है-  
आत्मस्वभावं परभावभिन्नमापूर्णमाद्यन्तविमुक्तमेकम्।  
विलीनसंकल्पविकल्पजालं प्रकाशयन् शुद्धनयोऽभ्युदेति ॥

परभाव-रागादिक विकारी भावों से भिन्न, स्वकीय गुणपर्यायों से अभिन्न, अनादि-अनन्त तथा संकल्प और विकल्पों के जाल से च्युत आत्मस्वभाव को प्रकट करता हुआ शुद्धनय प्रगट होता है। इस शुद्धनय का अवलम्बन लेकर आत्मस्वभाव की ओर जरा झाँको तो सही, ममता रहती है या चली जाती है? तात्पर्य यह है कि सुख की यदि चाह है, तो जहाँ सुख है, वहाँ खोजो। अवश्य ही उसकी उपलब्धि होगी।

भगवान् महावीर स्वामी की जय

‘सागर में विद्यासागर’ से साभार

## समाचार

### “सरिता” पत्रिका ने माफ़ी माँगी

ललितपुर। दिल्ली प्रेस की प्रमुख हिन्दी पाक्षिक पत्रिका ‘सरिता’ ने अपने जुलाई (प्रथम) २००८ के अंक में ‘बावनगजा में हुआ अभिषेक आपत्तियाँ और उत्तर’ शीर्षक से प्रकाशित संपादकीय में पूज्य उपाध्याय श्री १०८ ज्ञानसागर जी महाराज के फोटो के अनावश्यक रूप से प्रकाशन पर बेहद खेद प्रकट किया है। यह संभव हुआ है दिल्ली के विश्व जैनसंगठन की सक्रियता से। संगठन के सक्रिय कार्यकर्ता श्री संजय जैन के अनुसार संगठन ने इसका दिल्ली में तीव्र विरोध किया तथा दिल्ली प्रेस कार्यालय के सामने धरना प्रदर्शन किया तथा अनेक विरोध पत्र भिजवाये। ‘सरिता’ के जुलाई (प्रथम) २००८ के अंक में विश्व जैनसंगठन के विरोधपत्र मिलने के बाद ही खेद प्रकट करने की बात पत्रिका ने लिखी है, लेकिन दुख है कि रिपोर्ट में प्रकाशित अन्य आपत्तियों पर खेद प्रकट करने से पत्रिका ने इंकार कर दिया है।

सुनील जैन ‘संचय’ शास्त्री

### आई.ए.एस. में चयनित आशिमा को बधाई

श्री एन.के. जैन अभियंता एवं श्रीमती वनिता जैन, (नई दिल्ली) की बेटी आशिमा जैन का इस वर्ष संघ लोकसेवा आयोग द्वारा आई.ए.एस. में चयन किया गया है। उन्होंने पहले ही प्रयास में यह सफलता प्राप्त की है। निश्चित ही उनकी यह सफलता सराहनीय एवं अनुकरणीय है। जैन इण्टरनेशनल ट्रेड आर्गनाइजेशन, मुम्बई द्वारा नई दिल्ली में स्थापित छात्रावास में लोक सेवा आयोग द्वारा आयोजित परीक्षाओं में बैठनेवाले छात्रों को सभी सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं। इस छात्रावास

के बारह छात्रों ने इस वर्ष की लिखित परीक्षा में सफलता प्राप्त की है और अब वे साक्षात्कार की तैयारी कर रहे हैं।

सुरेश जैन

३०, निशात कॉलोनी, भोपाल

### एक महत्त्वपूर्ण सुधार

प्रातः स्मरणीय सन्त शिरोमणि आचार्य श्री १०८ विद्यासागर जी महाराज के जन्म के बारे में कुछ भ्रान्तियाँ फैली हुई हैं। जब उनके गृहस्थ अवस्था के भाई आदरणीय श्रीमान् महावीर जी मल्लप्पा अष्टगे जी से अभी ज्ञानोदय तीर्थ पर बात हुई तो उनसे जो सही जानकारी मिली, वह सभी को ज्ञात हो, इस बाबत यहाँ पर दी जा रही है-

माँ का नाम - श्रीमती मल्लप्पा अष्टगे  
माँ का जन्म स्थान - अक्कोड़ ग्राम  
तह. चिक्कोड़  
जिला- बेलगाम

पिता श्री मल्लप्पा जी  
का जन्म स्थान - सद्लगा, जिला-बेलगाम  
विद्याधर (विद्यासागर)  
जी का जन्म स्थान - ग्राम-सद्लगा  
तहसील-चिक्कोड़,  
जिला-बेलगाम

बड़े भाई श्री महावीर जी का फोन- 08338262244  
सुशीला पाटनी  
आर.के. हाउस,  
मदनगंज-किशनगढ़ (राज.)

# वास्तविक स्वतंत्रता की आवश्यकता

मुनिपुङ्गव श्री सुधासागर जी

प्रतिवर्ष १५ अगस्त को हमारे देश में स्वतंत्रता दिवस मनाया जाता है, लेकिन जब हम अपने देश की दशा (दुर्दशा) देखते हैं, तो प्रतीत होता है कि हम मात्र राजनैतिक दृष्टि से स्वतंत्र हुए हैं, अभी हमें व्यापक अर्थों में राष्ट्रीय स्वतंत्रता हासिल करना है, जो हमें हमारे जीवन की स्वतंत्रता उपलब्ध करायेगी। राजनैतिक स्वतंत्रता मात्र भौतिक या भौमिक अस्तित्व को स्वीकार करने में, बॉर्डर लाइन (विभाजन रेखा) तय करने में प्राप्त हो जाती है। तदनुसार कुर्सी की सत्ता भी मिल जाती है, किन्तु इसके साथ ही सत्ता का मद भी आसमान में उड़ते हुए झण्डे की तरह बढ़ जाता है। सत्तासीन व्यक्ति अहंकारी हो जाता है। यहीं प्रतीत होता कि हमारा देश स्वतंत्र नहीं हुआ है, हम स्वतंत्र नहीं हुए हैं, बल्कि हमारी कुर्सी स्वतंत्र हुई है। राजगद्दी स्वतंत्र हुई है। हमारा तंत्र स्वतंत्र हुआ है, किन्तु हमें स्वतंत्र होना अभी बाकी है। यदि हमें स्वतंत्रता मिली होती, तो फिर अपने ही सत्तासीनों के प्रति आपातकाल में यह नारा क्यों लगाना पड़ता कि- 'कुर्सी खाली करो कि जनता आती है।'

आज संपूर्ण देश और राज्यों में स्वतंत्रता के नाम पर स्वच्छंदता का साम्राज्य है, लोग बेखटके स्वतंत्रता का गाल घोंट रहे हैं। राजगद्दी के लिए संघर्ष तो सदा से चलता आया है, अभी चल रहा है और आगे भी चलेगा, किन्तु इंच-इंच जमीन और बूँद-बूँद पानी के लिए जो संघर्ष अपनों का अपनों के साथ होता है उसे देखकर हम क्या, कोई भी नहीं कह सकता कि हम वास्तविक रूप में स्वतंत्र हैं।

अंग्रेजों के समय का इतिहास उठाकर देखिये और आज का शासन देखिये? भ्रष्टाचार, घोटाले, रिश्वतखोरी, मिलावट की बातें किनके राज्य में अधिक हो रही हैं? हमारा शासन है और हमीं परेशान हैं। जिनके पास राजगद्दी है, वे उन्हें चुननेवाली जनता के साथ गुलामों जैसा व्यवहार करते हैं। जिन्हें अपने को सेवक मानना चाहिए था, वे राजा बन बैठे हैं और बड़ी चतुराई से इसे राजतंत्र नहीं बल्कि जनतंत्र कहते हैं। यह स्वतंत्रता की आड़ में स्वच्छंदता नहीं, तो और क्या है?

जो भी नेता राजगद्दी पर बैठते हैं, उनमें से अधिकांश अपने हाथ काले करके ही लौटते हैं। यह कोयले की दलाली नहीं है, फिर हाथ काले क्यों? इनमें से अनेक के हाथ दूसरे निर्दोषों के खून से लाल हुए होते हैं। अपने से कमजोर को पैरों से रौंदना इनके लिए रोजमर्रा की बात है। देश का खजाना खाली होता रहता है, गरीब और गरीब होते जाते हैं और अमीर दिन दूने रात चौगुने बढ़ते जाते हैं। यह दुर्दशा देखकर ही एक व्यक्ति ने कहा है कि आज देश को दुश्मनों से नहीं देश के रहनुमाओं से खतरा है। आज देश के खजाने को चोरों से नहीं, पहरेदारों से खतरा है। आज धर्म को नास्तिकों से नहीं, धर्म के माननेवाले तथाकथित ठेकेदारों से खतरा है। बड़ी विडम्बना हो गयी है कि हम स्वतंत्र देश में रहते हुए भी अपने को परतंत्र जैसा अनुभव करते हैं।

साहित्यजगत् में दो प्रकार के साँपों की चर्चा होती है- एक वे जो बामी (बिल) में रहते हैं और दूसरे वे जो आस्तीनों में पलते हैं। बामी के साँप से उतना खतरा नहीं है, क्योंकि हमें पता होता है कि यह बामी है, तो इसमें जरूर साँप होगा। इसलिए हम उससे सतर्क रहते हैं, दूर रहते हैं और उससे बचते हैं, किन्तु जब कोई आस्तीन का साँप बन जाये, तो उससे कैसे बचें? उसका तो पता ही नहीं होता कि वह अपनी ही आस्तीन में पल रहा है और जहाँ पल रहा है उसी को काटने की तैयारी कर रहा है। ऐसे साँप से बचना बहुत कठिन है। आज देश में यही हो रहा है।

अंग्रेज बामी के साँप थे, मंगोल बामी के साँप थे, मुगल बामी के साँप थे, पाश्चात्य विचारधारार्ये बामी के साँप थीं, इसलिए उनसे बचने का प्रयास करते थे और उन्हें अपने देश से निकाल कर ही दम लिया, किन्तु हमारे देश के ही तथकथित सत्ताधारी जन, नेता तो हमारी ही आस्तीनों के साँप सिद्ध हो रहे हैं, हम इनसे बचें भी तो कैसे? क्योंकि हम भी अपने को भारतीय मानते हैं और वे भी अपने को भारतीय बताते हैं। यहाँ तक कि वे अपने लिए अधिक भारतीय होने की घोषणा करते हैं। हम लोगों ने ही उन्हें अपने क्षेत्र से, अपने



वोट से चुनकर भेजा है। अब जब कि वह कह रहे हैं कि मैं सच्चा भारतीय हूँ और इसी के साथ दूसरे भारतीयों का शोषण कर रहा है, विनाश कर रहा है, तो हम अपना बचाव कैसे करें? यदि हम विकल्प पर विचार करते हैं, तो बड़ी मुश्किल से कोई अच्छी छविवाला व्यक्ति मिलता है और ज्यों ही हम उसे चुनकर नेता बनाकर संसद या विधान सभा में भेजते हैं कि कुछ ही दिनों में वह हमारे साथ अपरिचितों जैसा व्यवहार करने लगता है और कल तक जिसे हम अच्छा मान रहे थे, जो हमारे लिए आदर्श था, जब उसकी सीबीआई जाँच होती है तो आस्तीन का साँप वही निकलता है। सब से ज्यादा खतरनाक वही सिद्ध होता है। ऐसा कौन व्यक्ति है, जो राज्य सत्ता का स्वाद चख चुका हो और अपनी हथेलियों को दूध से धुला बता दे? कोई भी नहीं, सारी की सारी हथेलियाँ या, तो दूसरों के खून से लाल हैं, या काले धन या काले कारनामों से काली हैं। यह अलग बात है कि ऊपर से भले ही सुर्ख मेंहदी लगा रखी हो।

यहाँ मुझे बड़ा आश्चर्य होता है कि इस भौतिक सत्ता में ऐसा क्या आकर्षण है, जिसके के लिए व्यक्ति किसी का भी खून कर देता है और उसी खून की होली खेल कर अपने आपको पाक-साफ सिद्ध करता है? कभी-कभी तो जो हत्यारा है वही नेता, जिसकी हत्या हुई है, उसके परिवार में जाकर घड़ियाली आँसू बहाता है, सांत्वना देता है, जाँच और न्याय की बात करता है, टी.वी. पर बयान देता है कि दोषियों को बख्शा नहीं जायेगा। कैसे कर लेते हैं यह सब अभिनय? क्या इनकी आत्मा इन्हें धिक्कारती नहीं है? इन्होंने राजनीति के सेवार्थ को खून का दरिया बना दिया है और स्वयं, तो इसमें तैर ही रहे हैं और चाहते हैं कि दूसरे लोग भी इसमें तैरें, इनका अनुकरण करें। यह अपने आप को बहुत बड़ा उपकारी, परोपकारी मानते हैं कि देश का मैं बहुत बड़ा उपकार कर रहा हूँ। देश की बहुत बड़ी सेवा कर रहा हूँ और इनकी तथाकथित सेवा से

कितने लोग राजा से रंक और ईमानदार से बेईमान बन चुके हैं, इसका कोई विचार ही नहीं करता।

आज हम आजाद हैं। हमारा देश आजाद है, हमारे देश में प्रजातंत्र है। सारे लोग स्वतंत्रता का गुणानुवाद कर रहे हैं। गुणानुवाद करना भी चाहिए। इसी के साथ ज्यों ही १५ अगस्त-स्वतंत्रता दिवस आता है त्यों ही लोग मुगलों, अँग्रेजों की निन्दा करना प्रारंभ कर देते हैं, किन्तु यह विचार क्यों नहीं आता कि आज जो स्वतंत्र देश में स्वतंत्र घूम रहे हैं और जिनके कारनामों मुगलों, अँग्रेजों से भी बुरे और बद से बदतर हैं, उनकी हम निन्दा करने का साहस क्यों नहीं जुटा पाते? क्यों उनसे सार्वजनिक रूप से इस्तीफे की माँग नहीं कर पाते? आज के सच्चे समाजसेवी कब कल के आतंकवादी बन जायेंगे, यह कोई नहीं कह सकता। आज हिंसक, बलात्कारी, चोर, रिश्वतखोर, हत्यारे अनेक नेतागण सिद्ध हो चुके हैं। कानून से उन्हें सजा मिल चुकी है, किन्तु कानूनी बारीकियों का सहारा लेकर ही वे बेखौफ घूम रहे हैं। यह स्वतंत्र देश की कैसी न्यायव्यवस्था है?

हमारा भारत अध्यात्मप्रधान देश है। यही कारण है कि वह पाश्चात्य देशों से अलग दिखाई देता है, किन्तु इस देश में एक आध्यात्मिक साधु को स्वतंत्रता-दिवस पर भी कोई ध्वजारोहण के लिए आमंत्रित नहीं करेगा। आखिर क्यों? साधु भी तो एक बहुत बड़ी शक्ति है और इन नेताओं को इनसे भी खतरा नजर आता है। वे तो यही चाहते हैं कि साधु उनके लिए कुर्सी उपलब्ध कराने का साधन बनें। अरे, जब वे भगवान् को भी नहीं छोड़ते, तो भक्तों को कैसे छोड़ेंगे? आज के राजनेताओं में यह आदर्श है ही नहीं, जो राम और भरत के समय में था कि लो यह गद्दी, इस पर आप बैठो, नहीं इस पर आप बैठो, आज, तो जो जहाँ जिस कुर्सी पर बैठ जाता है, वहाँ से उतरने का नाम ही नहीं लेता। जब तक यह प्रवृत्ति बनी हुई है, तब तक कोई भी स्वतंत्रता हमारे जीवन में कार्यकारी नहीं बन सकती।

‘पार्श्वज्योति’ जुलाई-अगस्त 2008 से साभार

रहिमन लाख भली करो, अगुनी अगुन न जाय।  
राग सुनत पय-पियत हूँ, साँप सहज धरि खाय॥  
रहिमन ओछे नरन सों, बैर भलो न प्रीत।  
काटे चाटे श्वान के, दुहूँ भाँति विपरीत॥

# एक ही भाव से दो कार्य कैसे?

मुनि श्री प्रमाणसागर जी

शुभोपयोग के विषय में प्रायः यह प्रश्न उठया जाता है कि एक ही भाव से दो कार्य कैसे हो सकते हैं? शुभोपयोग रागभाव है, रागभाव बन्धन का कारण है। जो भाव बन्धन का कारण है, वह मोक्ष का कारण नहीं हो सकता।

आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने इस प्रश्न का समाधान-मूलक विवचेन करते हुए कहा है कि

ननु च तपोऽभ्युदयाङ्गमिष्टं देवेन्द्रादिस्थानप्राप्ति-हेतुत्वाभ्युपगमात्। तत् कथम् निर्जराङ्गं स्यादिति? नैष दोषः, एकस्यानेककार्यदर्शनादिग्नवत्। यथाग्निरेकोपि विक्लेदनभस्मांगारादिप्रयोजन उपलभ्यते तथा तपोऽभ्युदयकर्मक्षयहेतुरित्यत्र को विरोधः। सवार्थसिद्धि/पृ. ३२१।

अर्थ- तप को अभ्युदय का कारण मानना इष्ट है, क्योंकि वह देवेन्द्रादि स्थान-विशेष की प्राप्ति के हेतु रूप से स्वीकार किया गया है, अर्थात् तप को पुण्य बन्ध का कारण माना गया है, इसलिए वह निर्जरा का कारण कैसे हो सकता है? यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि अग्नि एक है, तथापि उसके विक्लेदन, भस्म और अंगार आदि अनेक कार्य उपलब्ध होते हैं, वैसे ही तप अभ्युदय और कर्मक्षय (मोक्ष) इन दोनों का कारण है। ऐसा मानने में क्या विरोध है?

स्वयं आचार्य कुन्दकुन्द ने अनेक स्थलों पर यह स्पष्ट लिखा है कि एक ही भाव से मोक्ष और पुण्य बन्ध रूप सांसारिक सुख दोनों मिल सकते हैं। देखें निम्न प्रमाण-

जिणवरमण जोई झाणे झाएइ सुद्धमप्पाणं।  
जेण लहइ णिव्वाणं ण लहइ किं तेण सुरलोयं॥ २० ॥  
जो जाइ जोघणसयं दियहेणेक्केण लेवि गुरुभारं।  
सो किं कोसद्धं पि हु ण सक्कए जाहु भुवणयले॥ २१ ॥  
मोक्षपाहुइ

अर्थ- जिनेन्द्र भगवान् के मत से योगी शुद्ध आत्मा का ध्यान करता है, जिससे वह मोक्ष जाता है, उसी आत्मध्यान से क्या वह स्वर्गलोक प्राप्त नहीं कर सकता? अर्थात् अवश्य प्राप्त कर सकता है। जैसे, जो पुरुष भारी बोझ लेकर एक दिन में सौ योजन जाता है, वही पुरुष क्या भूमि पर आधा कोस भी नहीं चल सकता? अर्थात् सरलता से चल सकता है। तात्पर्य यह है कि जिस आत्मध्यान से मोक्ष की प्राप्ति होती है, उसी आत्मध्यान से पुण्यबन्ध होकर उसके फलस्वरूप स्वर्ग में देव होता

है। यही बात आचार्य पूज्यपाद ने इष्टोपदेश में कही है।

दर्शनपाहुइ में भी आचार्य कुन्दकुन्द ने एक ही भाव से दोनों कार्यों के होने का कथन किया है-

सेयासेयविदण्हू उद्धुददुस्सील सीलवंतो वि।

सीलफलेणब्भुदयं ततो पुण लहई णिव्वाणं॥ १६ ॥

दर्शनपाहुइ

अर्थ- श्रेय और अश्रेय को जाननेवाला मिथ्यात्व को नष्ट करके शीलवान् हो जाता है। शील के फलस्वरूप अभ्युदय सुख को पाकर फिर मोक्ष सुख पाता है।

पञ्चास्तिकाय में आचार्य कुन्दकुन्द ने एक ही रत्नत्रय से बन्ध और मोक्ष रूप दोनों कार्यों का विधान किया है-

दंसणणाणचरित्ताणि मोक्खमग्गोऽति सेविदव्वाणि।

साघूहि इदं भणितं तेहिं दु बन्धो व मोक्खो वा॥ १६४ ॥

अर्थ- दर्शन, ज्ञान, चारित्र की एकता मोक्षमार्ग है, इसलिए वे सेवन करने योग्य हैं, ऐसा साधुओं ने कहा है, परन्तु उनसे बन्ध भी होता है और मोक्ष भी।

आचार्य वीरसेन स्वामी ने भी एक ही भाव के द्वारा बन्ध और मोक्ष दोनों कार्यों का विधान किया है-

“अरिहंतगमोक्कारो संपहिय बंधादो असंखेज्जगुण कम्मक्खयकारओत्ति तत्थवि मुणीणां पवुत्तिपसंगादो॥”  
जयधवला १/९।

अर्थ- अरिहन्तनमस्कार तत्कालीन बन्ध की अपेक्षा असंख्यातगुणी कर्म-निर्जरा का कारण है। उसमें भी मुनियों की प्रवृत्ति होती है।

आचार्य वीरसेन स्वामी यह भी कहते हैं कि रत्नत्रय स्वर्ग और मोक्ष का मार्ग है-

स्वर्गापवर्गमार्गत्वाद्दत्तत्रयं प्रवरः स उच्यते निरूप्यते अनेनेति प्रवरवादः। धवला १३/२८७।

अर्थ- स्वर्ग और मोक्ष का मार्ग होने से रत्नत्रय का नाम प्रवर है। उसका वाद अर्थात् कथन इसके द्वारा किया जाता है, इसलिए इस आगम का नाम प्रवरवाद है। यहाँ रत्नत्रय को मोक्ष और स्वर्ग दोनों का कारण कहा है।

इसी प्रकार अनेक प्रसंगों में आचार्यों ने एक ही भाव से बन्ध और मोक्ष रूप दोनों कार्यों का सद्भाव स्वीकार किया है। अतः हमें शुभोपयोग को पुण्यबन्ध के साथ परम्परा से मोक्ष का कारण मानना चाहिए।

‘जैनतत्त्वविद्या’ से साभार

# जिनेन्द्र-दर्शन एवं पूजन की विशेषता

पं० सदासुखदास जी काशलीवाल

**प्रश्न-** अरहन्त की प्रतिमा किसलिए पूजते हैं? अरहन्त भगवान् तो मोक्ष गये, सिद्धशिला स्थान पर हैं। धातु-पाषाण के प्रतिबिम्ब में तो वे आते ही नहीं हैं, वे अपनी पूजा कराना नहीं चाहते, किसी का उपकार-अपकार वे करते नहीं हैं, पूजन, स्तवन, अभिषेक करनेवालों से राग नहीं करते। फिर उन्हें किसलिए पूजते हैं? किसलिए पूजना चाहिए?

**उत्तर-** गृहस्थ ने आरम्भ-परिग्रह धारण कर रखा है। उसका मन शुद्धात्मस्वरूप के अवलम्बन में तो लगता नहीं है और बिना अवलम्बन के चित्त ठहरता नहीं है, तब अपने परमात्मभाव के अवलम्बन के लिए, वीतरागता से परिणाम जोड़ने के लिए प्रतिमा में साक्षात् अरहन्त के स्वरूप का संकल्प करके ध्यान, स्तवन, पूजन करता है। उस अरहन्त के स्वरूप में अपने परिणाम जोड़ने से, उस काल में समस्त सांसारिक संकल्प रुक जाते हैं, और अपने परमात्मस्वरूप का अनुभव होता है। उस परमात्मस्वरूप में एकाग्रता होने से सुख-ज्ञानरूप सम्पदा में विघ्न करनेवाले अन्तराय-कर्म का अनुभाग रस सूख जाता है, तथा वीतरागभाव के प्रसाद से असातावेदनीय से लेकर समस्त अशुभ प्रकृतियाँ जो पहिले बाँधी हुई सत्ता में बैठी थीं, उनका भी अनुभागरस नष्ट हो जाता है। तथा जो पूर्व की बाँधी हुई पुण्य प्रकृतियाँ हैं, उनमें अनुभागरस बढ़ जाता है। मन्द कषाय के प्रभाव से शुभ आयुर्कर्म के सिवाय समस्त कर्म-प्रकृतियों की स्थिति घट जाती है। ऐसी भगवान् की आज्ञा सिद्धान्तग्रन्थों में प्रसिद्ध है।

मन्द कषाय के प्रभाव से पूर्व के बाँधे हुए शुभ कर्मों में रस बढ़ जाता है, तथा अशुभ कर्मों का रस सूख जाता है, घट जाता है और आयुर्कर्म को छोड़कर समस्त कर्मप्रकृतियों की स्थिति घट जाती है। तीव्र कषाय के प्रभाव से समस्त कर्मों की पाप प्रकृतियों में अनुभागरस बढ़ जाता है, तथा पुण्य प्रकृतियों में रस घट जाता है और तीन आयु को छोड़कर समस्त कर्मों की स्थिति बढ़ जाती है।

अरहन्त भगवान् के गुणों में अनुराग-लीनता ही अरहन्त भक्ति है। उसके प्रभाव से दुख की कारण पाप-

प्रकृतियों में रस सूख जाता है, तब समस्त दुःख नष्ट हो जाते हैं, और सुख की कारण जो पुण्य-प्रकृतियाँ हैं उनका रस बढ़ जाता है, तब स्वर्ग आदि का सुख, राज्य सम्पदा, भोगादिक अपने आप ही प्रकट हो जाते हैं। यद्यपि भगवान् अरहन्त धातु-पाषाण के बिम्ब में आते नहीं हैं और वे वीतराग भगवान् किसी का उपकार-अपकार भी नहीं करते हैं, तथापि उनका नामस्मरण तथा प्रतिबिम्ब का दर्शन अपने शुभ परिणाम, वीतरागरूप ध्यान होने को बाह्य निमित्त है। जिस प्रकार रागरूप स्त्री-पुरुषों के अचेतन चित्र आदि देखने से राग प्रगट हो जाता है, उसी प्रकार वीतरागी का प्रतिबिम्ब भक्ति-पूर्वक देखने से वीतरागता प्रगट हो जाती है।

इस संसार में जीवों को जो राग-द्वेष होता है, वह समस्त केवल-अचेतन, स्वर्ण-चाँदी, मणि-माणिक्य, महल, वन, बाग, नगर-ग्राम, पाषाण-कर्दम-श्मशान, मनुष्य-तिर्यचों के शरीर, वचन-राग-रुदन, दुर्गन्ध-सुगन्ध, रस-विरस इत्यादि समस्त अचेतन पुद्गल द्रव्यों के विन्तवन, श्रवण, अवलोकन और अनुभवन से ही होता है।

जैसे ये समस्त ही अचेतन पदार्थ आत्मा को राग-द्वेष उत्पन्न कराने के सहकारी कारण हैं, वैसे ही जिनेन्द्र की परमशान्तमुद्रा ज्ञानियों के वीतरागता होने में सहकारी कारण है, प्रेरक नहीं। भव्यजीवों को वीतरागता के सिवाय अन्य किसी की चाह होती नहीं है।

जो जिनेन्द्र की प्रतिमा के आगे थाली में जल-चन्दनादि अष्टद्रव्य महिमा गाकर चढ़ाते हैं, उनका अभिप्राय ऐसा नहीं है कि भगवान् यह द्रव्य खा लें या उसकी वासना-स्वाद लें। उनका भाव तो ऐसा है कि जैसे किसी बड़े मण्डलेश्वर राजा का समागम मिलन हो, तब उनके ऊपर स्वर्ण-रतन मोती आदि बारकर, फेरकर क्षेपण कर देते हैं, आरती उतारते हैं, बहुमान करते हुए उन पर अक्षत-पुष्पादि क्षेपण करते हैं। यह सब अपनी भक्ति है, राजा को इससे कुछ लेने-देने का प्रयोजन नहीं है। उसी प्रकार भव्य जीवों को भक्ति करते हुए त्रैलोक्यनाथ परम मंगलरूप परमेश्वर परमात्मस्वरूप भगवान् अरहन्त के प्रतिबिम्ब-प्रतिमा को देखते समय

प्रकार आजकल के वक्ता भी (असंयमी व्यक्ति) माहौल को देखकर आगम के अर्थ को बदलते रहते हैं। वह व्यक्ति तीन काल में सत्य का उद्घाटन नहीं कर सकता, वह जल्दी-जल्दी आगम के अर्थ को पलट देता है। इस प्रकार की वृत्ति देखकर मन ही मन जिनवाणी रोती रहती है। मेरे ऊपर तुमने घूँघट लाया है, मैं घूँघट में जीनेवाली नहीं हूँ। मैं तो जन-जन तक पहुँचकर अपना संदेश देनेवाली हूँ। लेकिन, आजकल कुछ पंक्तियाँ तो अण्डर लाइन की जाती हैं, और कुछ पंक्तियाँ अण्डर ग्राउण्ड की जाती हैं। यह क्या सत्य है? यह क्या सत्य का प्रदर्शन है? नहीं यह इसलिये हो रहा है कि आज परमार्थ के स्थान पर अर्थ ने अपनी सत्ता जमा ली है। लोगों में राजनीति, अर्थनीति आ गई है, धर्मनीति के लिए स्थान नहीं बचा।

नौजवानो! उठो !! जागो !! यदि अपना हित चाहते हो, अपनी संस्कृति को जीवित रखना चाहते हो, अपने बाप-दादाओं के आदर्शों को सुरक्षित रखना चाहते हो, तो अर्थ के लोभ में आकर कोई कार्य नहीं करना। यहाँ पर लोभ का सरलीकरण है, यहाँ पर त्याग का अंगीकरण है। यहाँ पर केवल आत्मबल की चर्चा है। परमार्थ की चर्चा है, अर्थ की चर्चा नहीं है। आप लोग कहते हैं अर्थ, तो हाथ का मैल है यूँ-यूँ करने से वह निकल जाता है (हाथ मलते हुये) पुण्य की वह छाया है। पुण्य का उदय हुआ, तो वह आ जाता है और पाप का उदय हुआ, तो वह चला जाता है। आप धार्मिक अनुष्ठान करने के लिये महापुरुष अहर्निश प्रयास करते रहते हैं। उस सत्य की झलक पाने के लिये वे अपनी आँखें बिल्कुल खोल कर रखते हैं। आचार्य कुन्दकुन्द देव प्रवचनसार में कहते हैं-

**‘आगमचक्रव्यू होंति साहूण’**

आगम ही साधु की आँख है। साधुओं की आँख न तो धन-दौलत है, और न ही ख्याति, पूजा, लाभ, मंजिल तक पहुँचानेवाली आगम की आँख ही है। उस आँख को बहुत अच्छे ढंग से सम्भालकर रखना चाहिये। उस दृष्टि में जब विकार या पक्षपात आ जायेगा, तो जिनवाणी उस समय पिट जायेगी। जिनवाणी का मूल्यांकन समाप्त हो जायेगा। बन्धुओ! यह वह रत्न है, जिसको हम कहाँ रख सकते हैं देखो! समन्तभद्र स्वामी ने जो कि महान् दार्शनिक थे, अध्यात्मवेत्ता थे, उन्होंने रत्न-

करण्डकश्रावकाचार के अंत में लिखा है-

**येन स्वयं वीतकलङ्कविद्यादृष्टिक्रियारत्नकरण्डभावम्।  
नीतस्तमायाति पतीच्छयेव, सर्वार्थसिद्धिस्त्रिषु विष्टपेषु॥**

यह कारिका कितनी अच्छी लगती है! रत्न कहाँ पर रखते हैं? ट्रेजरी में ही रखते हैं न, हाँ...! तो उसमें बहुत से खाने होते हैं, उसके अन्दर एक ऐसी डिब्बी होती है जिस डिब्बी को देखकर मुँह में पानी आ जाता है। उसकी बनावट ही अलग प्रकार की रहती है, और उसके भीतर मखमल बिछा हुआ रहता है। लाल या हरा, उस हीरे के विपरीत रंगवाला ही होता है, वह मखमल का कपड़ा है और उस मखमल पर चमकता हुआ वह रत्न, हीरे का नग रहता है।

यह हुई रत्नों की बात, लेकिन श्रावकाचार किसमें रखा गया है, रत्नकरण्डक में। एक बात और ध्यान देने योग्य है कि रत्न-करण्डक का कई भाषाओं में अनुवाद हुआ लेकिन, ‘रत्नकरण्डक’ इस शब्द का अनुवाद नहीं हुआ। क्या मतलब? मतलब यह है कि हिन्दी में इसका अर्थ है ‘रयण मंजूषा’ रयण का अर्थ है रत्न, मंजूषा यानि पेट्टी, सन्दूकची। रत्न जैसे सन्दूकची में रखे होते हैं, उसी प्रकार सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रूपी तीन रत्नों को उन्होंने ‘रत्नकरण्डक’ में रखा है।

आचार्य कहते हैं, ये बड़ी अनमोल निधि है। जो कि बड़ी दुर्लभता से प्राप्त हुई है। छहढालाकार ने कहा है कि-

**इह विधि गये न मिले सुमणि ज्यों उदधि समानी।**

जिस प्रकार समुद्र में मणि गिर गई, तो पुनः मिलने-वाली नहीं है, ऐसी ही मनुष्य जीवन की कीमत है। इने-गिने लोग ही इस श्रावकाचार को अपनाते हैं। तीन कम नौ करोड़ ही मुनिराज हैं, जो मूलाचार के अनुसार चलनेवाले हैं और श्रावकों की संख्या तो असंख्यात है, लेकिन मनुष्यों में नहीं। अब सोचिये बहुत कम संख्या है। अनन्तानंत जीवों में से श्रावक बनने का सौभाग्य कुछ ही जीवों को होता है, जो कि आप लोगों को उपलब्ध है। ऐसे श्रावकाचार को अपनाओ। दृश्यमान पदार्थों की कोई कीमत नहीं है, हमें भी दृश्यमान पदार्थों की कीमत नहीं करना, द्रष्टा की कीमत आंकना है। आज हम दृश्य के ऊपर, ज्ञेय के ऊपर लेबिल लगाते जा रहे हैं। यह अध्यात्म नहीं है, यह सिद्धान्त नहीं है। हम ज्ञाता, द्रष्टा,

# असंख्यात-गुणश्रेणी-निर्जरा

सिद्धार्थकुमार जैन, सतना ( म.प्र. )

आचार्य उमास्वामी महाराज ने तत्त्वार्थसूत्र के नवम अध्याय में संवर और निर्जरा तत्त्व का वर्णन किया है। पहले सूत्र में संवर का लक्षण कहा तथा दूसरे सूत्र में वह संवर कैसे प्राप्त होगा, इसके कारणों को कहा और तीसरे सूत्र में तपसा निर्जरा च कहकर तप को संवर और निर्जरा में संयुक्त कारण निरूपित किया। आगे के सूत्रों में क्रम से विस्तार करते हुये 10 धर्म, 12 भावना 22 परीषह का वर्णन किया तथा 19वें सूत्र में बाह्य तप को तथा 20वें सूत्र में अंतरंग तप का वर्णन करते हुये इनके भेद-प्रभेदों को बताया। अन्तिम तप में ध्यान के वर्णन में शुक्लध्यान का वर्णन करने के पश्चात् सूत्र क्रमांक 45 में असंख्यातगुणश्रेणी निर्जरा के पात्रों को दर्शाया। इससे एक दृष्टि प्राप्त होती है कि आखिर यह कौन सी निर्जरा है, इसका कार्य क्या है, कौन-कौन-से जीव इसे कर सकते हैं, किन-किन कारणों से यह होती है इन्हीं सब बातों पर चिन्तन करने का प्रयत्न यहाँ किया जा रहा है।

**निर्जरा क्या है?**— आत्मा के साथ संश्लेष संबंध को प्राप्त पुद्गलकर्मों का एक देश आत्मा से झर जाना निर्जरा है एवं सम्पूर्ण कर्मों का झर जाना मोक्ष है यह सामान्य लक्षण कहा है। निर्जरा 2 प्रकार की बतलाई गई है। यथा-1. सविपाकनिर्जरा 2. अविपाकनिर्जरा।

1. **सविपाकनिर्जरा** सभी संसारी जीवों के होती है, बिना पुरुषार्थ के ही होती है। पूर्व में बँधा हुआ कर्म उदय में आता है अपना फल देकर निर्जीण हो जाता है यह सविपाक निर्जरा है।

2. **अविपाकनिर्जरा**-पुरुषार्थपूर्वक उदयसमय के पूर्व में कर्मों को उदय में लाकर निर्जरित करना अविपाक निर्जरा है। इसके आगम में कई उदाहरण दिये गये हैं, जिससे ये दोनों निर्जरा समझी जा सकती हैं। यथा सविपाकनिर्जरा पेड़ में स्वयं पकने के बाद आम गिरता है तथा दूसरी कच्चे आम को तोड़कर पाल लगाकर भिन्न-भिन्न तरीकों से उसे पकाया जाता है। यही दूसरी अविपाकनिर्जरा ही मुख्यतः मोक्षमार्ग में कारण है बिना अविपाकनिर्जरा के मोक्षमार्ग बनता ही नहीं है। इस अविपाकनिर्जरा में ही एक निर्जरा 'असंख्यातगुणश्रेणीनिर्जरा'

कही गयी है। यह निर्जरा मोक्षमार्ग में अपना विशेष स्थान रखती है।

**असंख्यातगुणश्रेणीनिर्जरा क्या है?**— जैसा कि शब्द से परिलक्षित होता है, असंख्यात गुणी निर्जरा जो श्रेणी रूप में बढ़ती जाती है और हर अगले समय में पूर्व समय से असंख्यातगुणे कर्मों की निर्जरा होती जाती है। इसे एक उदाहरण से समझने पर स्पष्ट हो जायेगा।

एक फकीर कुंभ के मेले में हरिद्वार गया और उसने घूमते हुये एक सेठ से एक रुपये भिक्षा की याचना की। सेठ ने उससे कहा कि एक रुपया कमाने में मेहनत होती है, मुफ्त में नहीं आता। हम एक रुपये को तो 6 माह में अपनी मेहनत से दुगना कर लेते हैं। फकीर सुनकर मुस्कराया और कहने लगा- सेठ आप बहुत कुशल व्यापारी हैं अतः एक रुपया मेरा भी आप रख लेवें, मैं अपना एक रुपया 12 वर्ष बाद अगले कुंभ पर ले लूँगा और अपना एक रुपया देकर चला गया। समय बीता 12 वर्ष बाद फकीर पुनः हरिद्वार पहुँचा। सेठ के पास गया और पिछले कुंभ की बात याद दिलाई। सेठ ने कहा- ठीक है, अपना हिसाब ले लो। सेठ ने उसे 10-20 रुपये देकर कहा हिसाब हो गया। फकीर तो अड़ गया कहने लगा- सेठ हिसाब में 10-20 कम दे देना, लेकिन हिसाब कर लो। सेठ ने हिसाब जोड़ा, तो वह एक रुपया हर 6 माह में दुगुने के अनुसार 24 किस्तों में 1 करोड़ 67 लाख 37 हजार 216 रुपये हो गया। सेठ घबड़ा गया। हम आप भी इतनी राशि सुनकर चौंक गये होंगे। लेकिन नीचे लिखे अनुसार हिसाब देखें-

1 रुपये 6 माह में 2, 1 वर्ष में 4, इसी प्रकार हर 6 माह में दुगुने क्रम से 8-16-32-64-128-256-512-1024-2048-4096-8192-16384-32768-65536-1, 31,072-2,62,144-5, 24,288-10, 48,576-20, 97,152-41, 84304-83, 68,608 एवं 24 वीं किस्त में 12 वर्ष बाद 1,67,37,216=00 रुपये हो गये। यह उदाहरण तो दुगुने-दुगुने क्रम का है, इसी क्रम को यदि हम गुणित क्रम में देखें, तो जो राशि पहले समय में एक है वही दूसरे समय में 4 तीसरे समय में 16 इस

क्रम से वृद्धि को प्राप्त होती है यथा- 1-1, 2-2, 3-4, 4-16, 5-256, 6-65536, 7-4,29,49,67,296 अर्थात् सातवें समय मात्र में यह राशि 1 से बढ़कर गुणित क्रम में 4 अरब 29 करोड़ 49 लाख 67 हजार दौं सो छियानवे हो गई। आठवें समय में गुणा करने पर राशि इतनी है कि हम उसे पढ़ भी नहीं पायेंगे। 9 अंक की संख्या हो जायेगी। इस प्रकार हमने द्विगुणित एवं गुणित क्रम को जाना। इसी बात को असंख्यात गुणित क्रम जानने के लिये देखें-

पहले समय में निर्जरितकर्म असंख्यात

दूसरे क्रम में अर्थात् दूसरे समय में असंख्यात

× असंख्यात

तीसरे समय में दूसरे समय की राशि × असंख्यात

चौथे समय में तीसरे समय की राशि × असंख्यात

इस प्रकार प्रतिसमय असंख्यात असंख्यात गुणी कर्मों की निर्जरा बढ़ती चली जाती है और जीव अपनी पात्रतानुसार पूरे-पूरे जीवन भर अपने अनन्त कर्मों को खिरा देते हैं। अपने पूर्व असंख्यातों जन्मों में बाँधे हुये कर्मों के बोझ को इस निर्जरा के द्वारा हलका कर लेते हैं और मोक्षमार्ग प्रशस्त करके मुक्ति को प्राप्त हो जाते हैं। इसमें और भी विशेषतायें हैं। यह सामान्य कथन किया है। अन्य विशेषताएँ आगे आनेवाले शीर्षकों में स्वयं प्रतिपादित हो जायेंगी। इसलिये उस प्रसंग को यहाँ नहीं लिया है।

असंख्यातगुणश्रेणी निर्जरा कौन कर सकता है- तत्त्वार्थसूत्र अध्याय 9 के 45 वें सूत्र में आचार्य उमास्वामी महाराज ने इसका खुलासा किया है। 10 पात्र बतला रहे हैं यथा-सम्यग्दृष्टिश्रावकविरतानन्तवियोजकदर्शन-मोहक्षपकोपशमकोपशान्त-मोहक्षपकक्षीणमोहजिनाः क्रमशोऽसंख्येयगुणनिर्जराः ॥ 9/45 ॥ इसका क्रम इस प्रकार है- 1. अविरतसम्यग्दृष्टि चतुर्थगुणस्थानवर्ती, 2. देशव्रती श्रावक पंचमगुणस्थानवर्ती, 3. विरत अर्थात् 6 वें एवं 7 वें गुणस्थानवर्ती मुनि महाराज, 4. अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना करनेवाले, 5. दर्शनमोह का क्षय करनेवाले, 6. चारित्रमोह का उपशम करनेवाले अर्थात् उपशम श्रेणी पर चढ़नेवाले मुनिराज, 7. उपशान्तमोह 11वें गुणस्थानवर्ती महामुनिराज, 8. मोहनीय की क्षपणा करनेवाले क्षपकश्रेणी पर आरूढ़, 9. मोहनीय परिवार को नाश कर लिया है ऐसे 12 वें गुणस्थानवर्ती मुनिराज और 10. जिन अर्थात्

अरिहन्त भगवान् 13वें एवं 14वें गुणस्थानवर्ती। इस प्रकार तत्त्वार्थसूत्रकार द्वारा उत्तरोत्तर विकसित दस पात्र कहे गये हैं।

**विशेष-** अन्य-अन्य ग्रन्थों में कहीं 11 स्थान भी कहे गये हैं। शास्त्रसारसमुच्चय की हिन्दी टीका जैनतत्त्व-विद्या के चौथे अध्याय सूत्र 62 में 11वाँ स्थान केवली समुद्घात लिया गया है, उस समय पूर्ववर्ती स्थिति से अधिक निर्जरा है ऐसा विवरण प्राप्त होता है। षड्खण्डागम परिशीलन पृष्ठ 39 पर भी धवला की 12वीं पुस्तक के अनुसार 11 स्थान कहे गये हैं।

**कौन-कौन से जीव कितनी निर्जरा कर सकते**

हैं- इस बात पर विचार करने के लिये हमें सर्वप्रथम यह जानना होगा कि यह निर्जरा प्रारम्भ कहाँ से होती है? जब मिथ्यादृष्टि जीव सम्यग्दर्शन प्राप्ति हेतु पाँच लब्धियों में करणलब्धि के परिणाम करता है, उस समय जो तीन करण-अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण रूप परिणामों के समय आयुर्कर्म को छोड़कर बाकी 7 कर्मों की बहुत निर्जरा होती है। उस समय उस जीव को सम्यक्त्व के सन्मुख या सातिशय मिथ्यादृष्टि जीव कहते हैं तथा जैसे ही यह जीव सम्यक्त्व प्राप्त करता है, तो सम्यक्त्वप्राप्ति के काल में इसकी जो निर्जरा होती है, उसे असंख्यातगुणी निर्जरा के प्रथम स्थान के रूप में लिया गया है। सातिशय मिथ्यादृष्टि अवस्था से सम्यक्त्व-अवस्था में जो निर्जरा होती है वह पूर्व-पूर्व की अपेक्षा असंख्यात गुणी होती है, इसलिये इसे पहले पात्र के रूप में स्वीकार किया गया है। पुनः वही जीव जब व्रत स्वीकार कर देशव्रती श्रावक बनता है, तो उसे द्वितीय पात्र स्वीकार किया गया है और उसकी निर्जरा अपनी प्रथम अवस्था से असंख्यात गुणी है। वही श्रावक जब महाव्रत स्वीकार करता है, मुनि अवस्था को प्राप्त होता है, तो श्रावक अवस्था में होनेवाली असंख्यातगुणी निर्जरा से भी असंख्यातगुणी निर्जरा करता है। वही मुनि महाराज जब अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना करते हैं, तो उस समय में होनेवाली निर्जरा पूर्व अवस्था से असंख्यात-गुणी है। वे ही महामुनिराज जब दर्शन मोहनीय की क्षपणा करते हैं, तो उस समय होनेवाली निर्जरा पूर्व अवस्था से असंख्यात गुणी है, वे ही महामुनिराज उपशम श्रेणी चढ़ते हैं, तो श्रेणी में होनेवाली निर्जरा उनकी पूर्व स्थिति से असंख्यात गुणी है। पुनः वे ग्याहरवें गुणस्थान को

प्राप्त करके उपशामक बनते हैं, तो पूर्ववर्ती अवस्था से 11वें गुणस्थान में होनेवाली निर्जरा असंख्यात गुणी है। वे ही मुनिराज जब क्षपक श्रेणी पर चढ़ते हैं, तो 11वें गुणस्थान की अपेक्षा उन्हीं मुनि महाराज की निर्जरा 8 से 10 गुणस्थानों में असंख्यात गुणी है। पुनः वे ही महाव्रती 12 वें गुणस्थानवर्ती क्षीणमोह हो जाते हैं, तो उनकी निर्जरा श्रेणी पर आरूढ़ अवस्था से असंख्यात गुणी है। तथा वही मुनिराज जब केवलज्ञान प्राप्त कर अरिहन्त भगवान् हो जाते हैं, तो उनकी निर्जरा क्षीणमोह अवस्था से असंख्यातगुणी है। इस प्रकार इन 10 स्थानों पर निर्जरा का क्रम दर्शाया है। जहाँ पर 11 स्थान बताये हैं, वहाँ अरिहन्त भगवान् अवस्था से भी ज्यादा निर्जरा जब वे केवली समुद्घात करते हैं, तो केवली अवस्था से भी असंख्यात गुणी निर्जरा करते हैं। यहाँ पर जो उदाहरण लिया गया है वह एक जीव को लेकर है। उसी जीव की अनेक अवस्थाओं के आधार पर लिया गया है। धवला पुस्तक 12 में अधःप्रवृत्त केवलीसंयत और योगनिरोध केवलीसंयत ऐसा लिया है।

**कौन-कौन से पात्र कब-कब करते हैं-** इस सम्बन्ध में विचार करते हैं कि पात्रों के अनुसार असंख्यात-गुणश्रेणी निर्जरा कितने समय तक होती है-

1. अविरत सम्यग्दृष्टि-सिर्फ सम्यग्दर्शन प्राप्ति के समय गुणश्रेणी निर्जरा करते हैं, तथा किससे असंख्यात-गुणी सो आचार्य कहते हैं कि सातिशय मिथ्यादृष्टिपने में जो निर्जरा हो रही थी, उससे असंख्यात गुणी करते हैं। अविरत सम्यग्दृष्टि यदि आगे नहीं बढ़ता, व्रतादि स्वीकार नहीं करता तो उसके जीवन में फिर नहीं होती सिर्फ सम्यग्दर्शन प्राप्ति काल में ही होती है।

2. व्रती श्रावक अपनी भूमिका में रहते हुये अविरत-सम्यग्दृष्टि अवस्था से असंख्यात गुणी करते हैं। यहाँ विशेषता है कि पाँचवाँ गुणस्थान जब तक बना रहेगा, तब तक निरन्तर असंख्यात गुणश्रेणी निर्जरा करते रहेंगे।

3. मुनि महाराज महाव्रती भी अपने योग्य गुण-स्थानों में पूरे समय तक निरन्तर गुणश्रेणी निर्जरा करते हैं।

4. अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना करनेवाले मात्र विसंयोजना के काल में करते हैं।

5. दर्शनमोहनीय की क्षपणा करनेवाले जीव भी, जिस समय क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्ति का उपाय करते

हैं, उस समय अपनी पात्रतानुसार निर्जरा करते हैं। उदाहरण के लिये कोई अविरत सम्यग्दृष्टि क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की भूमिका में जिस समय होगा, उस भूमिका में 5 वें क्रम में कही गई निर्जरा करेंगे, लेकिन सिर्फ क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्ति के काल में, शेष जीवन अव्रती हैं तो नहीं करेंगे।

**विशेष विचारणीय बिन्दु-** सूत्र 9/45 में जो 10/11 स्थान कहे गये हैं, उनमें चौथे नम्बर पर अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना करनेवाले एवं पाँचवें स्थान पर दर्शन-मोहनीय की क्षपणा करनेवाले पात्र को लिया गया है। वहाँ प्रश्न होता है कि ये पात्र कौन-से गुणस्थानवर्ती लेवें? क्या वहाँ पर चौथे गुणस्थानवर्ती-पाँचवें गुण-स्थानवर्ती जीव भी हो सकते हैं, अथवा मुनि की अपेक्षा से कथन है? यह विचारणीय है। क्या वहाँ वह अविरत सम्यग्दृष्टि-वियोजक एवं अविरतक्षायिक सम्यग्दृष्टि, मुनि महाराज की अपेक्षा असंख्यातगुणी निर्जरा करते हैं? इस सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न ग्रन्थों के सन्दर्भों को हम यहाँ प्रस्तुत करते हैं, जिसके द्वारा इस विषय पर प्रकाश पड़ता है। अलग-अलग आचार्यों में से बहुत से आचार्यों का अभिमत एक जैसा है, किन्तु धवलाकार का मत भिन्न दिखाई पड़ता है अतः हमें दोनों मत स्वीकार करने योग्य हैं।

धवला जी में बहुत स्पष्ट शंका और उसका समाधान करते हुये आचार्य वीरसेन स्वामी ने अनन्तानु-बन्धी वियोजक से असंयत-सम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और संयत को ग्रहण किया है तथा वहाँ पर अनन्तानुबन्धी वियोजक की विसंयोजना के काल में विशुद्धि अनन्तगुणी है। फलस्वरूप वहाँ पर मुनि (संयत) से भी ज्यादा निर्जरा अनन्तानुबन्धी-वियोजक करता है। यद्यपि दर्शन-मोहनीय की क्षपणा के सम्बन्ध में खुलासा नहीं किया, किन्तु सूत्रक्रम में पात्रक्रम से और पूर्व सूत्र के खुलासा से हम दर्शनमोहनीय की क्षपणा करनेवालों की गुणश्रेणी निर्जरा में भी असंयत, संयतासंयत और संयत को ग्रहण कर सकते हैं।

इस सम्बन्ध में अनेक ग्रन्थ एवं धवला जी का मन्तव्य का अवलोकन संक्षिप्त में करते हैं-

6. उपशामश्रेणी, क्षपकश्रेणी पर आरूढ़ होकर उपशामक, क्षीणमोह गुणस्थानवर्ती सभी जीव अन्तर्मुहूर्त तक निरन्तर अपनी पात्रता-अनुसार निर्जरा करते हैं, यह

जरूर है कि ऊपर-ऊपर की अवस्थाओं में अन्तर्मुहूर्त में पहले की अपेक्षा समय घटता जाता है और गुणश्रेणी निर्जरा असंख्यातगुणित क्रम से बढ़ती जाती है।

7. जिन भगवान् जब तक केवलीपने को प्राप्त रहते हैं, अपनी अरिहन्त अवस्था में निरन्तर असंख्यात गुणी निर्जरा करते हैं।

8. समुद्घात केवली भगवान् समुद्घात के समय अरिहन्त अवस्था से भी असंख्यात गुणी निर्जरा करते हैं।

**अन्य-अन्य ग्रन्थों का मन्तव्य-** सर्वार्थसिद्धिकार आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने सर्वार्थसिद्धि ग्रन्थ के नवें अध्याय के 45वें सूत्र की टीका करते हुए 908 वें अनुच्छेद में 10 पात्रों के अनुसार अपनी बात कही है तथा उसमें आचार्य महाराज ने वे 10 स्थान एक ही जीव के विकास क्रम को लेकर कहे हैं। आचार्य पूज्यपाद जी के मन्तव्य में अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना तथा दर्शनमोहनीय का क्षय करनेवाली अवस्था मुनि महाराज के ही लेवें, ऐसा दिखाई पड़ता है। वहाँ चतुर्थ गुणस्थानवर्ती के लिये भी कहा हो ऐसा नहीं झलकता, क्योंकि 'स एव, स एव' कहते हुये प्रारम्भ से दसों स्थानों को कहा। इसलिये क्रम में सम्यग्दृष्टि-श्रावक-विरत-अनन्तानुबन्धीवियोजक-दर्शनमोक्षक ऐसा क्रम कहा है, जिससे वहाँ मुनि की अपेक्षा से लेवें, ऐसा अवभासित होता है। सर्वार्थसिद्धि टीका पृष्ठ 362 संस्कृत टीका, हिन्दी अर्थ एवं पं० फूलचन्द्र जी शास्त्री का विशेषार्थ अवलोकन करने योग्य है।

2. तत्त्वार्थवृत्ति (आचार्य भास्करनन्दि-टीका) में भी नवम अध्याय के पैतालीसवें सूत्र की टीका करते हुए पृष्ठ 545-546 की संस्कृत टीका में यही भाव प्रदर्शित है। वहाँ निर्जरा के कालों की व्याख्या भी सुन्दर ढंग से की गई है।

3. 'जैन तत्त्व विद्या' ग्रन्थ में जो शास्त्रसारसमुच्चय की टीका के रूप में पूज्य प्रमाणसागर जी महाराज द्वारा रचित है, 4 थे अध्याय के सूत्र 62 की टीका 352-353 पृष्ठ पर विस्तार से की गई।

4. तत्त्वार्थसूत्र की टीका में श्री पं० फूलचन्द्र जी सिद्धान्तशास्त्री द्वारा भी इसी मन्तव्य को झलकाया गया है। देखें पृष्ठ अध्याय 9 सूत्र 45 पर।

5. तत्त्वार्थसूत्रटीका पं० कैलाशचन्द्र जी, बनारस द्वारा पृष्ठ 151 पर नवम अध्याय के पैतालीसवें सूत्र

के अर्थ एवं विशेषार्थ में बहुत सरल शब्दों में गुणश्रेणी निर्जरा के दस स्थानों का कथन किया है।

6. तत्त्वार्थसूत्र सरलार्थ के नवम अध्याय सूत्र 45 की टीका पृष्ठ 267-68 पर गुणश्रेणी निर्जरा के दस स्थानों का कथन करते हुये विशेषार्थ में 5 बातों द्वारा कथन को और स्पष्ट करते हुये एक जीव की अपेक्षा से ही कथन किया है।

7. तत्त्वार्थ राजवार्तिक के द्वितीय भाग पृष्ठ 635-636 अध्याय 9 के सूत्र 45 की टीका में अकलंकदेव स्वामी ने सम्यग्दृष्टि से तीनों सम्यग्दृष्टि : उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक ग्रहण किया है। पश्चात् श्रावक को कहकर आगे यथाक्रम से ले लेना।

8. तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक में आचार्य विद्यानन्दि महाराज ने भी संस्कृत टीका अध्याय 9/45 में सम्यग्दृष्टि से तीनों सम्यग्दृष्टि ग्रहण किये हैं, इससे ऐसा जान पड़ता है कि राजवार्तिककार और श्लोकवार्तिक-कार भी चौथे और पाँचवें क्रम की निर्जरा पात्रों में वहाँ मुनिवियोजक और मुनिक्षपक हैं, ऐसा कहना चाह रहे हैं। मुनि अवस्था प्राप्त होने के पश्चात् जो अगले क्रम में निर्जरा के जितने अन्य स्थान कहे गये, वे सब मुनि अपेक्षा हैं, ऐसा अभिप्राय जान पड़ता है।

9. षट्खण्डागम पुस्तक 12, सूत्र 178, पृष्ठ 82 पर उक्त विवरण प्राप्त होता है। 'उससे अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना करनेवाले की श्रेणी गुणाकार असंख्यात गुणा है ॥ 78 ॥'

स्वस्थान संयत के उत्कृष्ट गुणश्रेणी गुणाकार की अपेक्षा असंयत सम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और संयत जीवों में अनन्तानुबन्धी का विसंयोजन करनेवाले जीव का जघन्य गुणश्रेणी गुणाकार असंख्यातगुणा अधिक है।

अर्थात् संयत के जो उत्कृष्ट निर्जरा हो रही है, उससे अनन्तानुबन्धीवियोजक की जघन्य निर्जरा भी विसंयोजना के काल में असंख्यात गुणी है।

**शंका-** संयमरूप परिणामों की अपेक्षा अनन्तानुबन्धी का विसंयोजन करनेवाले असंयत सम्यग्दृष्टि के परिणाम अनन्तगुणा हीन होते हैं। ऐसी अवस्था में उसके असंख्यात गुणी प्रदेश निर्जरा कैसे हो सकती है?

**समाधान-** यह कोई दोष नहीं, क्योंकि संयमरूप परिणामों की अपेक्षा अनन्तानुबन्धी कषायों की विसंयोजना में कारणभूत सम्यक्त्वरूप परिणाम अनन्तगुणे उपलब्ध हैं।



**शंका-** यदि सम्यक्त्व रूप परिणामों के द्वारा अनन्तानुबन्धी कषायों की विसंयोजना की जाती है, तो सभी सम्यग्दृष्टि जीवों में उसकी विसंयोजना का प्रसंग आता है?

**समाधान-** ऐसा पूछने पर उत्तर में कहते हैं कि सब सम्यग्दृष्टियों में उसकी विसंयोजना का प्रसंग नहीं आ सकता है, क्योंकि विशिष्ट सम्यक्त्वस्वरूप परिणामों के द्वारा ही अनन्तानुबन्धी कषायों की विसंयोजना स्वीकार की गई है।

इस प्रसंग पर धवला जी की 12वीं पुस्तक के पृष्ठ 78 गाथा नं. 7-8 तथा सूत्र क्रमांक 175 से 185 अवलोकन करने योग्य हैं।

**उपसंहार-** असंख्यात-गुणश्रेणी-निर्जरा का अवलोकन करने के पश्चात् दृष्टि में यह बार-बार आता है कि जीव भिन्न-भिन्न स्थानों पर अपनी भूमिका, पात्रता अनुसार हर अगले स्थान पर पिछले स्थान की अपेक्षा असंख्यात गुणी, असंख्यात गुणी निर्जरा करते हैं, तो कर्म बाँधे कितने थे? पिछली अनेक पर्यायों में संग्रह के रूप इकट्ठे होते गये ये कर्म तो मेरु के समान से जान पड़ते हैं और इतने कर्मों का बोझ लेकर जीव बिना गुणश्रेणी निर्जरा करे ऊपर आ ही नहीं सकता। बाँधते समय तो न होश था न ज्ञान, लेकिन निर्जरा के समय का प्रकरण देखकर आँखें चौधियाँ जाती हैं।

उसमें भी एक विशेषता है कि अविरत सम्यग्दृष्टि जीव की निर्जरा तो मात्र सम्यक्त्वप्राप्ति के काल में होती है, जबकि व्रती श्रावक, मुनिराज की गुणश्रेणी निर्जरा पूरे जीवनकाल में निरन्तर हर पिछले समय की अपेक्षा अगले समयों में असंख्यात गुणी होती जाती है। अपने जीवनकाल में देशव्रती, महाव्रती कितनी निर्जरा कर लेते हैं इसका आकलन अवश्य करना चाहिये।

मेरा व्यक्तिगत विचार है कि सभी सुधी पाठक, विद्वान् प्रवचनकार जो अपने विचारों, लेखों, प्रवचनों के माध्यम से जीवों के कल्याणमार्ग को प्रशस्त कर रहे हैं, उनसे मेरा अनुरोध है कि हम आस्रव-बंध की चर्चा के साथ संवर की चर्चा भी बहुत करते हैं, किन्तु इसी

कड़ी में निर्जरा में असंख्यात गुणश्रेणी निर्जरा की भी चर्चा सामान्य जीवों के बीच में करें, सभी जीवों को यह समझ में आये, तो लोग अवश्य ही व्रतों की ओर अग्रसर होंगे, व्रतीजीवन अंगीकार करके गुणश्रेणी निर्जरा के माध्यम से अपने अनन्तों कर्मों के बोझ को वर्तमान पर्याय में बड़े ही सहज ढंग से हलका करने में सक्षम हो सकेंगे। जब तक व्रती जीवन अंगीकार नहीं भी कर सकेंगे, तब तक अपने परिणामों द्वारा उस पद को पाने की भावना, अपने कर्मों को निरन्तर खिराने की भावना को बलवती बनाते हुये अपने विकास के मार्ग को गति देंगे, ऐसा मेरा मानना है।

### सन्दर्भ-ग्रन्थसूची

1. सर्वार्थसिद्धि-संस्कृत टीका आचार्य पूज्यपाद हिन्दी टीका पं० फूलचन्द्र शास्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन।
2. तत्त्वार्थवार्तिक-अकलंकदेव, प्रकाशक भारतीय ज्ञान-पीठ दिल्ली।
3. तत्त्वार्थवृत्ति-भास्करनन्दी टीका अनु. आर्यिका जिनमती, प्रकाशक पांचूलाल जैन किशनगढ़।
4. तत्त्वार्थवृत्ति-श्रुतसागरीय टीका, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन।
5. जैन तत्त्व विद्या-पू. प्रमाणसागर जी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन।
6. तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक-संस्कृत टीका, आचार्य विद्यानन्दि, प्रकाशन गांधी रंगानाथ जैन ग्रंथमाला, मुम्बई।
7. तत्त्वार्थसूत्र-पं० फूलचन्द्र शास्त्री प्रकाशन।
8. तत्त्वार्थसूत्र-पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री, प्रकाशन भारतवर्षीय जैन संघ, चौरासी मथुरा।
9. तत्त्वार्थसूत्र सरलार्थ-भागचन्द्र जैन इन्दु, गुलगंज, प्रकाशन जबलपुर।
10. षट्खण्डागम परिशीलन-पं० बालचन्द्र शास्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन।
11. षट्खण्डागम धवला पुस्तक 12, प्रकाशन सिताबराय लखमीचन्द विदिशा।

(तत्त्वार्थसूत्र-निकष से साभार)

मन तीरथ कैसे बने, तन की है जब भूख।

धर्म बिना है आदमी, जैसे सूखा रूख॥

योगेन्द्र 'दिवाकर', सतना, म.प्र.

# तीर्थ की संकल्पना और उनका विकास

प्रो. वृषभ प्रसाद जैन

“तीर्थ” शब्द संस्कृत की ‘तृ’ प्लवनतरणयोः धातु से बना है, जिसका अर्थ निकलता है कि जो डूबकर, डुबकी लगवाकर पार उतारने का काम करता है, तीर्थ कहलाता है, इसीलिए जहाँ लोग तैरते हैं, जहाँ लोग तारे जाते हैं, जहाँ से लोग भव-समुद्र से तरते हैं, वे स्थान-विशेष तीर्थ कहलाते हैं, इसीलिए तीर्थ तरण-स्थल होने के साथ-साथ तारण (पार उतारनेवाले) स्थल भी होते हैं। भारतीय संस्कृति के पोषक प्रायः सभी धर्मों में तीर्थों की मान्यता है। हर धर्म, सम्प्रदाय के अपने तीर्थ हैं, जो उनके किसी महापुरुष अथवा किसी महत्त्वपूर्ण घटना के स्मारक के रूप में जाने जाते हैं। यही कारण है कि प्रत्येक धर्म के धर्मानुयायी तीर्थों की यात्रा और वंदना के लिए बड़े तन्मय होकर बड़ी श्रद्धा, आस्था व भक्ति-भाव से जाते हैं और आत्मशांति की प्राप्ति के लिए तत्पर रहते हैं, इसीलिए तीर्थ-स्थान शांति, कल्याण व पुरुषार्थ-चतुष्टय की परम प्राप्ति के धाम माने जाते हैं, इसके साथ ही साथ उनकी मान्यता पवित्र-स्थल के रूप में भी है, भले, कुछ लोगों ने अब उन्हें पूरी तरह पवित्र-स्थल न भी रहने दिया हो। इन पवित्र-स्थलों में पवित्रता दो अर्थों में समाहित होती है- १. ये स्वयं पवित्र होते हैं। २. जो इनके संपर्क में आता है, उसे पवित्र कर देते हैं, इसीलिए पवित्र होने के भाव से भी लोग यहाँ आते-जाते हैं। यही कारण है कि तीर्थ का एक काम पवित्रीकरण भी है। इसीलिए जब कोई यात्री तीर्थ के लिए जाता था जाता है या जब तीर्थ से लौटकर आता था, आता है, तो गाँव देहात, आस-पड़ोस, नाते-रिश्तेदारी आदि के लोग, उससे मिलने के लिए आते थे, आते हैं, ऐसी परम्परा है, क्योंकि उन्हें लगता है कि उनके मनोभाव तीर्थ-कथा सुनने से व उसके सम्पर्क से कुछ अंशों में पवित्र जरूर हो जाएँगे। इस भेंट में व्यक्ति-सम्पर्क की बात नहीं है, बल्कि परम्परया तीर्थ-सम्पर्क की बात है, जिसके पीछे वही पवित्रीकरण का भाव है।

जैनधर्म में भी तीर्थ का बड़ा महत्त्व है, इसीलिए जैन धर्मानुयायी भी बड़े भक्तिभाव से प्रायः प्रतिवर्ष किसी न किसी तीर्थ की वंदना, अर्चना करने के लिए जाते-

आते हैं। इसके पीछे उनका भाव रहता है कि तीर्थक्षेत्र की वंदना से पुण्य संचय होता है, पुण्य-संचय से व्यक्ति सत्कर्म में प्रवृत्त होता है और सत्कर्म धर्मारोधना का कारण बनता है, तथा धर्मारोधना मुक्ति की साक्षात् कारक है ही। इसी अद्भुत भाव के कारण ही असमर्थ वृद्धजन, महिलाएँ आदि भी पैदल कई किलोमीटर की सीधी चढ़ाईवाले पहाड़ पर भी प्रभु का स्मरण करते हुए बड़ी आसानी से चढ़ जाते हैं, उन्हें तनिक भी शारीरिक कष्ट का अनुभव नहीं होता, जब कि रोग-व्याधि की पीड़ा के कारण अपनी रोजमर्रा की जिंदगी में वे कराहते रहते हैं। इसीलिए जैनपरम्परा के ग्रन्थ ‘समाधिगतक’ में भी संसार-समुद्र से तरन तारण करानेवाले, पार उतारनेवाले को तीर्थ कहा गया-“संसारोत्तरणहेतुभूतत्वात् तीर्थम्।” आचार्य जिनसेन ने भी अपने आदिपुराण में लिखा है कि जो इस भव-सागर से पार करे, वही तीर्थ है, ऐसा तीर्थ जिनेन्द्र-देव का चरित्र ही हो सकता है तथा उस चरित्र के कथन करने को ही तीर्थ-संकथा कहा जाता है-

संसारोत्तरणपरस्य तरणे तीर्थमिष्यते।

चेष्टितं जिननाथानां तस्योक्तिः तीर्थसंकथा ॥

बात इतनी ही नहीं आचार्य जिनसेन ने तो धवलाकार की मान्यता को आगे बढ़ाते हुए मुक्ति के उपायभूत सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक् चारित्र को ही तीर्थ के रूप में प्रस्तुत किया है, क्योंकि वे ही तीनों मिलकर मोक्षमार्ग बनते हैं व मुक्ति के साक्षात् साधन के रूप में प्रस्तुत होते हैं, यथा-

‘मुक्त्युपायो भवेत्तीर्थम्।’ आदिपुराण २/३९

धवलाकार कहते हैं कि धर्म का अर्थ सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक् चारित्र है, चूँकि इनसे संसार-सागर से तरते हैं, इसलिए इन्हें तीर्थ कहा गया है। धवलाकार के ही शब्दों में-

धम्मोणाम सम्महंसण-णाण-चरित्ताणि। एदेहि-  
संसार-सायरं तरंति त्ति। एदाणि तित्थं।

८,३,४२,९२,७

आचार्य समंतभद्र ने अपने युक्त्यनुशासन ग्रन्थ में तीर्थ को सबका कल्याण करनेवाला माना है और लिखा

है कि हे प्रभु! आपका यह सर्वोदय तीर्थ सबका कल्याण करनेवाला है- 'सर्वोदयं तीर्थमिदं तवैव।'

जैनपरम्परा के प्राचीन ग्रन्थों में तीर्थ शब्द के पर्याय के रूप में 'क्षेत्र-मंगल' पारिभाषिक का प्रयोग भी होता रहा है, जिसका अर्थ है कि जिस क्षेत्र में जाने से अहंकार का, दंभ का, मोह का, ममत्वबुद्धि का गलन होता है, समाप्ति होती है, क्षरण होता है, वह स्थान-विशेष 'क्षेत्र-मंगल' कहलाता है। षट्खण्डागम में गुण-परिणत-आसनक्षेत्र अर्थात् जहाँ पर अनेक विभूतियों के द्वारा योगासन, वीरासन आदि अनेक आसनों के माध्यम से अनेक प्रकार के योगाभ्यास व जितेन्द्रियता आदि गुण प्राप्त किये गए हों, ऐसे क्षेत्र-विशेष-परिनिष्क्रमण-क्षेत्र, केवलज्ञानोत्पत्ति-क्षेत्र और निर्वाण-क्षेत्र आदि को 'क्षेत्र-मंगल' कहते हैं, इसके उदाहरण ऊर्जयन्त, गिरनार, चंपा, पावा आदि नगर क्षेत्र हैं-

तत्रक्षेत्र-मंगलगुणपरिणतासनपरिनिष्क्रमण-केवल-ज्ञानोत्पत्ति-परिनिर्वाण-क्षेत्रादिः। तस्योदाहरणम्-ऊर्जयन्त-चंपा पावानगरादिः।

गोम्मटसार में आचार्य नेमिचन्द्र ने कहा है कि ऊर्जयन्त आदि महान् अरहंत आदिकों के दीक्षा और केवलज्ञान आदि की प्राप्ति के क्षेत्र-मंगल आदि स्थान आत्मगुणों की प्राप्ति के साधन हैं-

“क्षेत्र-मंगलमूर्जयन्तादिकमर्हदादीनां निष्क्रमण-केवलज्ञानादिगुणोत्पत्तिस्थानम्।”

षट्खण्डागम और गोम्मटसार आदि के क्षेत्र-मंगल के संदर्भ में उक्त उल्लेखों को देखने से यह तथ्य उभरकर आता है कि हमारी परम्परा में तीर्थकर भगवान् के पाँचों कल्याणकों में से गर्भ-कल्याणक व जन्म कल्याणक-स्थलों की मान्यता क्षेत्र-मंगल के रूप में थी, इसीलिए हमारे अधिकांश प्राचीन तीर्थ तीर्थकर भगवंतों के इन्हीं तीन कल्याणकों से संबद्ध हैं। कुछेक ऐसे तीर्थ भी हैं, जो तप, ज्ञान व मोक्ष कल्याणकों में से कुछ कल्याणकों के साथ-साथ गर्भ व जन्म कल्याणक-स्थल भी हैं। इस पूरे तथ्य के पीछे विचार यही है कि चूँकि तप, ज्ञान और मोक्ष संसार-समुद्र से पार उतरने में सीधे कारक हैं, इसलिए उनके स्थल ही हमारे यहाँ तीर्थ के रूप में प्रतिष्ठित हुए, अन्य कल्याणक स्थल उस रूप में नहीं। इतना ही नहीं गर्भ व जन्म तो प्रायः अधिकांश तीर्थकर भगवंतों के राजप्रासादों में हुए हैं और वे जैन

परम्परा में उपास्य इसलिए नहीं हो सकते, क्योंकि वे तो ऊँचे से ऊँचे भोग-विलास के प्रतीक रहे हैं, न कि त्याग के, तब भला हमारी परम्परा भोग-विलास-स्थल को तीर्थ के रूप में कैसे स्वीकारे? इधर कुछ लोग अब तीर्थकर, भगवंतों के गर्भ व जन्म स्थलों को भी तीर्थ के रूप में स्थापित करने में जुट गए हैं, जो किसी मायने में हमारी त्याग की परम्परा का पोषण नहीं हैं, इससे हमें बचना चाहिए और हमारे समाज को इससे सावधान रहना चाहिए। इन उत्तरवर्ती तीन कल्याणक-स्थलों में भी सबसे अधिक पूज्यता सिद्ध क्षेत्रों, मोक्ष-कल्याणक-स्थलों अर्थात् निर्वाण-भूमियों की ही है, क्योंकि बंधन-मुक्ति के बिना संसार-सागर से पार उतरना संभव नहीं और वह पूरी तरह होता तब है, जब मोक्ष की प्राप्ति होती है, इसीलिए मुक्ति के स्थल-तीर्थों, सिद्ध-क्षेत्र-रूप तीर्थों को ही हमारी परम्परा में सबसे अधिक पूजनीयता प्राप्त हुई।

इस उपर्युक्त चर्चा से तीर्थ के दो स्वरूप उभर कर आते हैं- १. विचार तीर्थ का, २. स्थावरतीर्थ का। विचारतीर्थ वह है, जो हमारी भाव-शुद्धि कराकर सीधे मोक्ष तक ले जाता है, इसीलिए हमारी परम्परा में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक् चारित्र रूपधर्म को भी तीर्थ कहा गया, यही कारण है कि समंतभद्राचार्य ने तो सर्वोदयी जिनशासन को ही तीर्थ कह दिया। तीर्थकर के उत्तरवर्ती तीन कल्याणक-स्थलों को स्थावर तीर्थ के रूप में लिया जा सकता है। इधर कुछ स्थलों की मान्यता किसी मंदिर या मूर्ति में चमत्कार के कारण भी हो गई है, जो न निर्वाण-क्षेत्र हैं और न अन्य कल्याणक क्षेत्र ही, ऐसे क्षेत्र अतिशय-क्षेत्र के रूप में माने जाते हैं, परन्तु यदि इन अतिशय-क्षेत्रों को भी तीर्थ माना जाए या मान लिया जाए, तो इनकी गणना भी स्थावर तीर्थ के रूप में ही की जाएगी। मेरे दैहिक पिता अहिंसा-वाणी के संपादक श्री वीरेन्द्र प्रसाद जी जैन आचार्य श्री विद्यासागर जी को व उनके संघ को अपनी चर्चाओं में जंगम, गतिमान तीर्थ कहते थे और उन्हें विचार-तीर्थ, व स्थावर-तीर्थ का संगम मानते थे, क्योंकि उनकी मान्यता थी कि आचार्य श्री का साधु-संघ निरंतर रत्नत्रय धर्म की साधना में रत रहता है, इसलिए वह विचार-तीर्थ तो है ही, पर चूँकि व्यक्ति साधु के रूप में उनकी भौतिक उपस्थिति भी है, इसलिए वे स्थावर-तीर्थ भी हैं।

तीर्थों का विकास, पुनरुद्धार व समृद्धि हमारी वैयक्तिक, सामाजिक व पारमार्थिक जरूरत है, पर उनका विकास करते समय हमें इस बात का निरंतर ध्यान रखना चाहिए कि हमारे तीर्थ केवल स्थावर-क्षेत्र ही नहीं रहे हैं, बल्कि उनमें स्थापित मंदिर व उनमें स्थापित जिनबिम्ब व उनका परिकर ज्ञान-विज्ञान, विद्याओं और कलाओं के केन्द्र के रूप में भी रहा है और वे विचार-शुद्धि, भाव-शुद्धि के परम केन्द्र भी रहे हैं। यदि यह कहा जाए कि उन तीर्थों पर रहनेवाले प्रायः सभी परम साधकों का चरम लक्ष्य वही विचार-शुद्धि या भाव-शुद्धि रहा है, तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी, क्योंकि उसी की चरम प्राप्ति ही तो मोक्ष है। हम आज जो तीर्थों का विकास कर रहे हैं, उसमें स्थावर रूप-विशेष का तो पोषण हो रहा है, पर ज्ञान-विज्ञान, विद्याओं कलाओं व विचारकेन्द्र का पोषण लगभग नगण्य है, जब कि लक्ष्य उस पर ही रखकर स्थावर का विकास होना चाहिए। हाँ, कुछेक तीर्थों पर जहाँ आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज स्वयं या उनके संघ के दीक्षित साधु विराजते हैं, वहाँ भाव-शुद्धि की साक्षात् कारक विचार-चर्चाएँ शास्त्र-पारायण के माध्यम से होती हैं, अन्यथा अधिकांश तीर्थक्षेत्र बौद्धिक चर्चा या गतिशील बौद्धिक चेतना से लगभग शून्य हैं, समुचित शास्त्र भण्डार तक नहीं है, उन शास्त्रों के पढ़ने, पढ़ानेवालों की बात क्या की जाए? ज्ञान-विज्ञान, विद्याओं कलाओं, बौद्धिक चेतना या बौद्धिक चर्चा को समाहित करते हुए तीर्थों के पोषण के लिए हमने कोई विकास की रूपरेखा भी अभी तक तय नहीं की है, जबकि वह शायद तीर्थों के स्थावर विकास से कहीं ज्यादा जरूरी है। हमें इस ओर भी ध्यान देना चाहिए और इसकी सुदीर्घ योजना भी बनानी चाहिए, तभी सही मायने में तीर्थों का समुचित विकास होगा, हो सकेगा। उम्मीद है

कि शायद इस ओर यत्न हो। इधर हमारे तीर्थों की पहचान पर भी निरंतर हमले होने लगे हैं और ये हमले बाहरवालों के द्वारा ही नहीं हो रहे हैं, बल्कि हमारे अपने भीतर के लोगों के द्वारा भी होने लगे हैं, मुझे तो लगता है कि ये जो हमारे अपने लोग इन हमलों में शरीक हो रहे हैं, वे वैचारिक रूप में अब नियंत्रित कहीं और से हो रहे हैं, जिसका परिणाम यह हो रहा है कि हमारे तीर्थों की पहचानें अब धूमिल पड़ने लगी हैं। मैं अभी कुछ वर्ष पहले एक तीर्थ पर गया, वहाँ रात-भर रुका, रात में जागरण के नाम पर रतजगा हुआ और उस रतजगा में पद्मावती की उपासना के नाम पर जो कुछ हुआ, उसे देखकर भीतर तक हिल गया और उससे कहीं नहीं लगा कि ये दुर्गा की उपासना पर होनेवाले जागरण से थोड़ा भी कहीं से अलग है, बल्कि लगा तो यह कि यह उसकी भौंडी नकल भर है। हमारी भजन-आरती की जो पद्धति थी, वह उस रतजगा में पूरी तरह गायब थी। इतना ही नहीं, नृत्य का जो ढंग था, उससे ऐसा लग रहा था कि जैसे कुछ शराबी मदहोश होकर झूम रहे हों, कहीं से नहीं लग रहा था कि यह हमारा भाव-प्रधान पारंपरिक नृत्य है। हमारे अपनी तरह के होनेवाले दौलतराम, दानतराय आदि के आरती-भजनों का होना और उनका रचा जाना भी अब लगभग हमारे तीर्थों व मंदिरों पर बंद-सा हो गया है। यह बहुत घातक है। तीर्थ हमारी पहचान के प्रतीक हैं, इसलिए उन पर होनेवाली हर गतिविधि हमारी अपनी पहचान को समृद्ध करनेवाली होनी चाहिए, इसके लिए हमें सजग रहना पड़ेगा, यदि हमने ऐसा नहीं किया और समय रहते नहीं चेते, तो सच मानिए कि हम ऐसी जगह पहुँचेंगे, जहाँ से कोई राह हमें अपने घर लौटने की न मिलेगी, जिससे हमें बचना चाहिए।

‘विद्वद्विमर्श’ से साधार

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम्।

लोचनाम्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति॥

जिसमें शास्त्र समझने की बुद्धि ही नहीं है, शास्त्र उसका क्या कर सकते हैं? जिस मुनष्य की आँखें ही नहीं हैं, दर्पण उसका क्या कर सकता है?

निर्विषेणापि सर्पेण कर्त्तव्या महती फणा।

विषमस्तु न वाप्यस्तु फणाटोपो भयङ्करः॥

आत्मरक्षा के लिए विषहीन सर्प को भी अपना फन फैलाना चाहिए। विष हो, चाहे न हो, फन का फैलाना मात्र भयंकर होता है।

# अष्टपाहुड में बिम्बविधान

प्रो. रतनचन्द्र जैन

अष्टपाहुड नाम से प्रसिद्ध आठ पाहुड आचार्य कुन्दकुन्द की ऐसी कृतियाँ हैं, जिन्हें शैलीविज्ञान की कसौटी पर कसा जा सकता है। आचार्य ने उनमें भाषा को काव्यात्मक बनानेवाले अनेक शैलीय तत्त्वों का प्रयोग किया है। शैलीवैज्ञानिक भाषा में उन्हें चयन, विचलन, समानान्तरता, प्रतीकविधान, बिम्बविधान अप्रस्तुतविधान आदि नामों से संकेतित किया जाता है। कुन्दकुन्द ने अष्टपाहुड में बिम्बों के प्रचुर प्रयोग द्वारा अमूर्त और अप्रत्यक्ष आध्यात्मिक भावों को मूर्तरूप से प्रस्तुत कर अनुभूतिगम्य बनाया है।

## बिम्ब का लक्षण

किसी पूर्वानुभूत इन्द्रिगम्य वस्तु का नाम सुनकर उसके स्वरूप का जो दृश्य मन या स्मृति में उपस्थित होता है उसे बिम्ब कहते हैं। उदाहरणार्थ गुलाब शब्द के श्रवण से एक विकसित पंखुडियोंवाले सुन्दर आकार, लाल या गुलाबी रंग, एक मधुर गन्ध एवं मृदुल स्पर्श की पूर्वानुभूतियाँ स्मृति में उतर आती हैं। स्मृति में उभरी इन्हीं पूर्वानुभूतियों का नाम बिम्ब है।

‘न्यू इण्टरनेशनल डिक्शनरी आफ् इंग्लिश लैंग्वेज’ में बिम्ब (Image) की परिभाषा इस प्रकार दी गई है—

“Image is a mental representation of Something not actually present to the senses, a revival or imitation of sensible experience or of sensible experience together with accompanying feelings, the reproduction in memory or imagination of sensations of sight, touch, hearing etc. as visual, tecticle, auditory images”

एँसाइक्लोपीडिया आफ् ब्रिटेनिका (Vol. 12, page 103) में बिम्ब का स्वरूप नीचे लिखे शब्दों में बतलाया गया है—

“Images are conscious memories which reproduce a previous perception in whole or in part, in the absence of the original stimulus to the perception.”

## बिम्बप्रकार

ऐन्द्रिय संवेदना के आधार पर बिम्ब पाँच प्रकार के होते हैं— चक्षुपरक, श्रवणपरक, घ्राणपरक, स्वादपरक और स्पर्शपरक। गुलाब शब्द के श्रवण से जो विकसित पंखुडियोंवाले एक सुन्दर आकार तथा लाल या गुलाबी

वर्ण की पूर्वानुभूति स्मृति में आविर्भूत होती है, वह चक्षुपरक बिम्ब है, एक विशेष सुगन्ध का जो अनुभव मानस पटल पर उभरता है वह घ्राणपरक बिम्ब है, तथा जो मृदु स्पर्श का अहसास स्मरण में आता है, वह स्पर्शपरक बिम्ब है। इसी प्रकार ‘कोयल’ शब्द से जो ‘कुहू-कुहू’ की मधुर ध्वनि का पूर्वानुभव ताजा हो जाता है, उसे श्रवणपरक बिम्ब कहेंगे तथा ‘इमली’ शब्द सुनने से जो खटास की अनुभूति स्मृति में जागती है उसका नाम स्वादपरक बिम्ब है।

## बिम्बसृजन का मार्ग

जब किसी वस्तु, गुण, क्रिया, स्थिति या मनोभाव का स्वरूप (विशेषता) बतलाने के लिए किसी अन्य मूर्त पदार्थ से उसका सादृश्य दिखलाया जाता है, अथवा अन्य मूर्त पदार्थ या अन्य मूर्त पदार्थ के धर्म का उस पर आरोप किया जाता है अथवा उसके स्थान में अन्य मूर्त पदार्थ का ही प्रतीक के रूप में प्रयोग किया जाता है, तब पाठक या श्रोता के मन में उस अन्य मूर्त पदार्थ का बिम्ब निर्मित होता है और उसके द्वारा वर्ण्य वस्तु, गुण, क्रिया, स्थिति (दशा) या मनोभाव का स्वरूप पाठक की अनुभूति में उतरता है। मनोभावों और प्रवृत्तियों को मुखमुद्राओं, आंगिक चेष्टाओं तथा शरीरिक स्थितियों (अनुभावों) के वर्णन द्वारा व्यक्त करने से भी बिम्बों की सृष्टि होती है। तात्पर्य यह कि बिम्ब की रचना सादृश्यमूलक अलंकारों, लाक्षणिक शब्दों, प्रतीकों, मुहावरों एवं लोकोक्तियों के प्रयोग तथा अनुभावादि के वर्णन से होता है।

## बिम्ब के व्यापार

बिम्ब में अमूर्त और अप्रत्यक्ष भाव मूर्त होकर अनुभूतिगम्य बन जाते हैं। वे मन को अमूर्त भावों के स्वरूप की प्रतीति करा देते हैं। जैसे कोधाग्नि कहने से अग्नि के बिम्ब द्वारा हृदय को क्रोध की उग्रता के दर्शन हो जाते हैं। किसी भाव के स्वरूप की प्रतीति उसका नामोल्लेख करके नहीं कराया जा सकती। सुन्दर वस्तु को सुन्दर कहने से उसके सौन्दर्य की अनुभूति नहीं होती। सुन्दर शब्द सुन्दरता की सूचना देता है, अनुभूति नहीं कराता। सुन्दरता का अनुभव सुन्दरता का बिम्ब अर्थात् दृश्य उपस्थित करके कराया जा सकता है। क्रोध

का नाम सुनने से भय उत्पन्न नहीं होता, क्रोध का रूप देखने से भय उत्पन्न होता है। 'भय' शब्द सुनने से रोंगटे खड़े नहीं होते, भयानक दृश्य देखने से रोंगटे खड़े होते हैं। 'हास्य' शब्द सुनने से हँसी नहीं आती, हास्यास्पद दृश्य देखने से हँसी आती है। बिम्ब इसी प्रकार के दृश्य हैं। वे भावों के नाम नहीं, रूप हैं। इसलिए उनसे भावों के स्वरूप का अनुभव अपने आप हो जाता है।

यतः बिम्ब सौन्दर्य, यौवन, अनुरक्तता, कुरूपता, भयंकरता, हास्यास्पदता, क्रोधाविष्टता, विस्मयान्विता आदि के शब्दनिर्मित मनोगत दृश्य हैं, इसलिए उनके मन में उपस्थित होते ही सहृदय के हृदय में आनंद, अनुराग, घृणा, भय, ग्लानि, हास्य आदि भावों का उद्वेलन होता है, जिसे रसानुभूति कहते हैं। इस प्रकार बिम्बों में भावोद्वेलनक्षमता होती है।

बिम्ब में अनेक भाव गुंथे होते हैं। वे समस्त भाव उस एक बिम्ब के द्वारा अनुभूति में उतारे जाते हैं। अर्थ-गौरव से युक्त होने के कारण उनमें संक्षिप्तता होती है, फलस्वरूप उनका प्रभाव तीक्ष्ण होता है।

### अष्टपाहुड़ में बिम्ब

आचार्य कुन्दकुन्द ने अष्ट पाहुड़ों में अमूर्त एवं अप्रत्यक्ष आध्यात्मिक भावों को बिम्बविधान द्वारा मूर्तरूप में प्रस्तुत कर गम्य बनाया है, जिससे वे अध्येता के मन में उतरकर अज्ञान की ग्रन्थियाँ खोलते हैं और वैराग्य की भावधारा प्रवाहित करते हैं। आचार्य कवि ने अलंकार, लक्षणा, मुहावरे, लोकोक्ति आदि सभी प्रकार के काव्यभाषात्मक उपादानों का आश्रय लेकर बिम्बसृष्टि की है। यहाँ इन सभी के कुछ नमूने प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

### अलंकाराश्रित बिम्ब

'संखिज्जमसंखिज्जगुणं सासारिमेरुमिच्छाणं'

(चारित्तपाहुड़, १९)

(सङ्ख्येयामसङ्ख्येयगुणां सर्षपमेरुमात्रं णं)

यहाँ संख्यातगुणी निर्जरा की अत्यल्पता और असांख्यातगुणी निर्जरा की प्रचुरता के भाव सर्षप (राई) और मेरु शब्दों के द्वारा मूर्तरूप में व्यक्त किये गये हैं। 'सर्षप' और 'मेरु' शब्दों के श्रवण से उनके सूक्ष्म और दीर्घ आकारों के चाक्षुष बिम्ब मन में उपस्थित होते हैं। उनसे उपर्युक्त निर्जराओं की मात्रा में जो विशाल अन्तर है, उसकी प्रतीति हो जाती है। इससे यह प्रेरणा मिलती

है कि यदि कर्मों की अत्यधिक निर्जरा करनी हो, तो सम्यग्दर्शन के बाद सम्यक्चारित्र धारण करना अनिवार्य है। उपर्युक्त बिम्बों की सृष्टि उपमा अलंकार के द्वारा की गई है।

'भंजसु मणमक्कडं पयत्तेण' (भावपाहुड़, ८८)  
(भङ्गिध मनोमर्कटं प्रयत्नेन)

यहाँ मनोमर्कट रूपक में मन का चंचल स्वभाव 'मर्कट' शब्द में मूर्त हो गया है। इस शब्द के श्रवण से मर्कट की छवि के साथ उसकी चंचल प्रवृत्ति का चक्षुपरक बिम्ब मानसपटल पर उभरता है, उससे मन का चंचलस्वभाव प्रतिभासित हो उठता है। मन की अविवेकशीलता भी व्यंजित होती है। अमूर्त चंचलभाव की यह मूर्तरूप में अभिव्यक्ति रूपक अलंकार पर आश्रित है।

'जीवविमुक्को सवओ दंसणमुक्को य होइ चलसवओ।'

जीवविमुक्तः शवको दर्शनमुक्तश्च भवति चलशवक।  
(भावपाहुड़ १४१)

'जीवरहित शरीर शव है और सम्यग्दर्शनरहित शरीर चलता-फिरता शव है।' इस उदाहरण में चलशवकः (चलती-फिरती लाश) शब्द में सम्यक्त्वविहीन मनुष्य के जीवन की निस्सारता, हेयता, अमंगलमयता, अपवित्रता, अपूज्यता, एवं अदर्शनीयता के भाव मूर्त हो गये हैं। ये सब भाव इस शब्द के पठन-श्रवण से निर्मित चाक्षुष बिम्ब के द्वारा हृदय में उतर जाते हैं और सम्यक्त्वविहीन जीवन वास्तव में निस्सार प्रतीत होने लगता है। इस बिम्ब का आधार भी रूपक अलंकार है।

निष्कम्प जलते दीपक के बिम्ब में ध्यान का स्वरूप मूर्तिमान् हो उठा है—

जह दीवो गब्भहरे मारुयवाहाविवज्जिओ जलइ।  
तह रायानिलरहिओ झाणपईवो वि पज्जलइ॥

(भावपाहुड़ १२१)

जैसे गर्भगृह में रखा दीपक हवा के झोंकों के अभाव में निष्कम्प जलता है, वैसे ही रागरूपी वायु के अभाव में ध्यानरूपी दीपक भी प्रज्वलित होता है।

यहाँ निष्कम्प जलते दीपक के बिम्ब द्वारा ध्यान के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। दीपक की ज्योति के निष्कम्प हो जाने के समान चित्तवृत्ति का आत्मा में स्थिर हो जाना ध्यान है। हवा के झोंकों का बिम्ब राग के चित्तविक्षेपकारी स्वरूप का आभास कराता है। जैसे

हवा के झोंके दीपक की ज्योति को स्थिर नहीं होने देते, वैसे ही राग चित्तवृत्ति को स्वभाव में स्थिर नहीं होने देता। हवा के झोंकों के अभाव में दीपक के निष्कम्प जलने का बिम्ब राग के अभाव में चित्तवृत्ति के स्थिर हो जाने (ध्यान के सिद्ध हो जाने) के स्वरूप को स्पष्ट करता है।

जपापुष्पादि परद्रव्य के सम्पर्क से स्फटिकमणि के रंग-बिरंगे हो जाने के बिम्ब द्वारा आत्मा के विभाव-परिणमन-स्वभाव की मूर्तरूप में प्रतीति करायी गयी है-

जह फलिहमणि विसुद्धो परदव्वजुदो हवेइ अण्णं सो।

तह रागादिविजुत्तो जीवो हवदि हु अण्णविहो ॥

(मोक्खपाहुइ ५१)

जैसे स्फटिकमणि स्वभाव से स्वच्छ होने के कारण स्वयं रंग-बिरंगा नहीं होता, अपितु जपापुष्पादि परद्रव्य के सम्पर्क से होता है, वैसे ही आत्मा स्वभाव से शुद्ध होने के कारण स्वयं रागादिरूप परिणमित नहीं होता, अपितु रागादिप्रकृत्यात्मक पुद्गलकर्मों के सम्पर्क से होता है।

स्फटिकमणि की स्वच्छता के बिम्ब द्वारा आत्मा की स्वाभाविक शुद्धता (रागादिशून्यता) का रूप दर्शाया गया है। जपापुष्पादि का बिम्ब कर्मों की रागादिप्रकृत्यात्मकता का अनुभव कराता है। तथा जपापुष्पादि के सम्पर्क से स्फटिकमणि के रंग-बिरंगे हो जाने का बिम्ब कर्मों के निमित्त से आत्मा के रागादिरूप परिणमित हो जाने के विभावपरिणमन-स्वभाव को स्पष्ट कर देता है।

कर्मक्षय हो जाने पर पुनर्जन्म नहीं होता, इस अमूर्त तथ्य को मूर्त पदार्थ के स्वभाव द्वारा स्पष्ट करने के लिए आचार्य कुन्दकुन्द ने जले हुए बीज के पुनः भूमि में अंकुरित न होने का दृष्टान्त दिया है, जो अपने बिम्ब-वैशिष्ट्य से उक्त तथ्य को अच्छी तरह हृदयंगम करा देता है-

जह वीयम्मि य दड्ढे ण वि रोहइ अंकुरो य महीवीढे।

तह कम्मवीयदड्ढे भवंकुरो भावसमणाणं ॥

(भावपाहुइ, १२४)

बीज का बिम्ब कर्मों की पुनर्जन्महेतुता का द्योतन करता है। उसके दग्ध होने का बिम्ब कर्मों के नष्ट होने तथा परिणामस्वरूप पुनर्जन्म का अभाव हो जाने के स्वरूप को स्पष्ट करता है।

साधु की परीषहजयदृढ़ता के स्वरूप का अनुभव

जलमग्न पाषाण के स्वभाव द्वारा कितनी स्पष्टता से हो जाता है-

जह पत्थरो ण भिज्जइ परिट्ठिओ दीहकाल्मुदएण।

तह साहू ण विभिज्जइ उवसग्गपरीषहेहिंत्तो ॥

(भावपाहुइ, ९६)

जैसे पाषाण चिरकाल तक जल में डूबे रहने पर भी विदीर्ण नहीं होता, वैसे ही साधु उपसर्ग-परीषहों से आक्रान्त होने पर भी क्षुब्ध नहीं होता।

पाषाण के बिम्ब में साधु की परीषहजयदृढ़ता मूर्त हो गई है।

जलगत कमलिनीपत्र के स्वभाव का दृश्य मन में उपस्थित होते ही सम्यग्दृष्टि के वैराग्यभाव का रूप हृदय में उतर जाता है-

जह सलिलेण ण लिप्पइ कमलणिपत्तं सहावपयडीए।

तह भावेण ण लिप्पइ कसायविसएहि सप्पुरिसो ॥

(भावपाहुइ, १५२)

जैसे कमलिनी पत्र जल में रहते हुए भी स्वभावतः जललिप्त नहीं होता, वैसे ही सम्यग्दृष्टि जीव विषयभोग करते हुए भी स्वभावतः उनमें आसक्त नहीं होता।

जब तक मोक्ष-साधना-योग्य सामग्री (द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, उत्तमसंहननादि) प्राप्त नहीं हो जाती, तब तक अव्रतों के द्वारा नरक में जाने की बजाय व्रतों के द्वारा स्वर्ग में जाना क्यों अच्छा है? इसका समाधान आचार्य कुन्दकुन्द ने धूप में बैठकर साथी की प्रतीक्षा करनेवाले तथा छाया में बैठकर प्रतीक्षा करनेवाले पुरुषों की स्थिति का बिम्ब उपस्थित कर बड़े प्रभावशाली ढंग से किया है-

वरवयतवोहि सग्गो मा दुक्खं होउ निरइ इयरेहिं।

छायातवट्टियाणं पडिवालंताण गुरुभेयं ॥

(मोक्खपाहुइ, २५)

जिनागम से जुड़े रहने का लाभ धागे से संयुक्त सुई की स्थिति से प्रकट हो जाता है-

सुत्तं हि जाणमाणो भवस्स भवणासणं च सो कुणदि।

सूई जहा असुत्ता णासदि सुत्ते सहा णो वि ॥

(सुत्तपाहुइ, ३)

जिस प्रकार धागे से संयुक्त सुई खो नहीं पाती, उसी प्रकार जिनसूत्र से जुड़ा जीव भवसागर में विलीन नहीं होता।

बिम्बों के माध्यम से सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान

में अविनाभाव सम्बन्ध की प्रतीति निम्न गाथा में करायी गयी है।

जह फुल्लं गन्धमयं भवदि हु खीरं घियमयं चावि।  
तह दंसणं हि सम्मं णाणमयं होइ रूवत्थं॥  
(बोहपाहुड, १५)

जैसे फूल गन्धमय और दूध घृतमय होता है, वैसे ही सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञानमय होता है। वह सम्यग्दर्शन यति, श्रावक और असंयतसम्यग्दृष्टि के स्वरूप में स्थित है।

### लक्षणाश्रित बिम्ब

सोने और जागने की शारीरिक क्रियाओं से निर्मित बिम्बों में आचार्यश्री ने उदासीन और सावधान रहने के भावों को मूर्त रूप दिया है-

जो सुत्तो ववहारे सो जोइ जग्गए सकज्जम्मि।  
जो जग्गदि ववहारे सो सुत्तो अप्पणे कज्जे॥  
(मोक्षपाहुड, ३१)

जो योगी लौकिक कार्यों में उदासीन रहता है, वह स्वकार्य में अर्थात् कर्मक्षयसाधना में सावधान रहता है। जो लौकिक कार्यों में जागरूक रहता है, वह स्वकार्य में उदासीन रहता है।

### मुहावराश्रित बिम्ब

आचार्य कुन्दकुन्द ने अष्ट पाहुडों में अनेक मुहावरों का प्रयोग किया है जिनसे सुन्दर बिम्ब निर्मित हुए हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

'आराहणाविरहिया भमन्ति तत्थेव तत्थेव।' (दंसणपाहुड, ४)

जिनशास्त्र में श्रद्धा से रहित जीव वहीं-वहीं भटकते रहते हैं।

'वहीं-वहीं भटकने' के मुहावरे से निर्मित चाक्षुष बिम्ब द्वारा मिथ्यादृष्टि जीव के संसार में ही भटकते रहने, मोक्ष प्राप्त न कर पाने का भाव मूर्त हो गया है।

### लोकोक्ति-आश्रित बिम्ब

'गुड़-दूध पीने पर भी साँप निर्विष नहीं होता' इस लोकोक्ति का बिम्बवैशिष्ट्य जिनधर्म की विशेषता और अभव्य जीव के स्वभाव की अनुभूति कराता है-  
ण मुयइ पयडि अभव्वो सुट्टु वि आयण्णिऊण जिणधम्मं।  
गुडदुद्धं पि पिबन्ता ण पण्णया णिव्विसा होन्ति॥  
(भावपाहुड, १३६)

'गुड़-दूध' का बिम्ब जिनधर्म की सुखप्रदता एवं कल्याणकारिता की व्यंजना करता है। साँप के बिम्ब से अभव्य जीव के अत्यन्त घातक मिथ्यात्व से युक्त होने की प्रतीति होती है। तथा गुड़-दूध पीने पर भी साँप के निर्विष न होने का बिम्ब अभव्य जीव के इस कुस्वभाव की स्वाभाविकता को बुद्धिगम्य बनाता है कि वह अत्यन्त हितकारी जिनधर्म का श्रवण करने पर भी मिथ्यात्व नहीं तजता।

अष्टपाहुड में उपलब्ध बिम्बविधान के ये कुछ निदर्शन हैं। इनसे आचार्य कुन्दकुन्द की काव्यप्रतिभा का साक्षात्कार हो जाता है। मन का चंचलस्वभाव, सम्यक्त्वहीन मनुष्य के जीवन की निस्सारता, अपवित्रता एवं अपूज्यता, आत्मा की विभावपरिणमनशीलता, कर्मों की पुनर्जन्म-हेतुता, साधु की परीषहजयदृढ़ता, सम्यग्दृष्टि की अनासक्तता, चित्तवृत्ति की एकाग्रता, अव्रतों और व्रतों का फर्क इत्यादि आध्यात्मिक एवं अतीन्द्रिय भावों के स्वरूप को मूर्त पदार्थों के स्वभाव एवं अवस्थाओं के द्वारा हृदयंगम बनाने में आचार्य कुन्दकुन्द ने अप्रतिम शैलीय कौशल दिखलाया है। उन्होंने अमूर्त आध्यात्मिक भावों को मूर्त पदार्थों और उनकी अवस्थाओं के बिम्बों द्वारा मूर्त कर दृश्यमान सा बना दिया है। आचार्य कुन्दकुन्द के बिम्ब अधिक सजीव एवं ऐन्द्रिय हैं, उनमें वैचित्र्य एवं वैविध्य की प्रचुरता है। इससे उनकी सूक्ष्म निरीक्षणशक्ति का परिचय मिलता है।

ए / 2, शाहपुरा, भोपाल म.प्र.

### कबीर-वाणी

गुरवा तो घर घर फिरै, दीक्षा हमरी लेहु।  
कै बूड़ौ कै ऊबरौ, टका पर्दनी देहु॥  
सतगुरु ऐसा कीजिए, जाका पूरन मन।  
अनतौले ही देते हैं, नाम सरीखा धन्न॥  
गुरु मिला तब जानिये, मिटे मोह मन-ताप।  
हरष शोक व्यापै नहीं, तब गुरु आपै आप॥



# जैन एकता के लिए ठोस एवं प्रभावी प्रयास करें

सुरेश जैन, आई. ए. एस. (से.नि.)

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी के मुखपत्र 'जैन तीर्थ वंदना,' (अगस्त, २००८) में कमेटी के महामंत्री श्री चक्रेश जैन ने कमेटी की प्राथमिकता का उल्लेख करते हुए बताया है कि सीधे एवं सकारात्मक संवादों के माध्यम से तीर्थों के विवाद समाप्त हों। हम उनकी इस घोषणा का स्वागत करते हैं। इसी पत्रिका में मध्यप्रदेश में स्थित जैन अतिशय क्षेत्र मक्सी पार्श्वनाथ में हुए विवाद समापन की शुरुआत का उल्लेख श्री बाहुबली पाण्डया ने किया है। इस क्षेत्र के विवाद को समाप्त करने में आध्यात्मिक क्षेत्र में सुस्थापित आचार्य श्री पद्मसागर जी एवं मुनिराज श्री क्षमासागर जी के आशीर्वाद ने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। स्थानीय न्यायाधीश श्री गंगाचरण दुबे की प्रेरणा एवं इस क्षेत्र पर पूर्ण निष्ठापूर्वक कार्यरत श्री मदनलाल दलाल एवं श्री पद्मकुमार पाटोदी के सतत प्रयत्न अत्यधिक सराहनीय एवं अनुकरणीय रहे हैं। श्री दलाल ने ७० के दशक में देवास में मेरे साथ पाँच वर्ष तक सफलतापूर्वक शासकीय कार्य करते हुए ग्रामीण विकास के क्षेत्र में अनेक कीर्तिमान स्थापित किए हैं। अनेक अवसरों पर मक्सी पहुँचकर मुझे एवं मेरी पत्नी श्रीमती विमला जैन को १२५ वर्ष पुराने विवाद के समाधान में श्री दलाल एवं श्री पाटोदी को मार्गदर्शन देने और विवाद समाप्त होने पर बधाई देने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। राष्ट्रीय नेतृत्व से मेरा निवेदन है कि सामाजिक एकता में असाधारण योगदान देनेवाले इन दोनों समाजसेवकों का सम्मान राष्ट्रीय स्तर पर किया जाय।

श्री दीपचन्द्र गंगवाल ने अपने आलेख तीर्थ संरक्षण और हमारे दायित्व में अपेक्षा की है कि धर्म, तीर्थ संरक्षण और समाज की चतुर्मुखी प्रगति के लिए सौहार्द, प्रेम और सहयोगपूर्वक कमेटी को आगे बढ़ना होगा। सम्पूर्ण राष्ट्र में फैले हुए कमेटी के ३२०० सदस्यों को अपने कर्तव्यों को समझना होगा। जैन दर्शन, धर्म, संस्कृति और इतिहास का ज्ञान प्राप्त करना होगा। संयमित जीवन जीने की कला सीखना होगी। उन्होंने यह महत्वपूर्ण सलाह दी है कि समाज के विशाल भवनों में विश्व स्तर के तकनीकी एवं प्रशासनिक शिक्षा के केन्द्र खोले जायें।

यह अत्यधिक सराहनीय है कि कमेटी ने नव निर्वाचित अध्यक्ष श्री आर.के. जैन ने घोषित किया है कि नई कमेटी में तन से, मन से और धन से योगदान देनेवाले व्यक्ति सम्मिलित किए गए हैं। अतः भूतकाल में जो परिणाम पाँच साल में आये थे, वे एक साल में नजर आने लगेंगे। वर्तमान ध्रुवफण्ड में से भविष्य में कोई व्यय नहीं किया जावेगा। नई राशि एकत्रित कर तीर्थों की सुरक्षा एवं जीर्णोद्धार के कार्यों पर व्यय की जावेगी।

यह उल्लेखनीय है कि श्वेताम्बरसंघ की ओर से श्री ललित नाहटा ने स्थूलभद्रसंदेश वर्ष १२ अंक-८, अगस्त, २००८ में प्रकाशित अपने संपादकीय में यह विश्वास प्रगट किया है कि श्री आर.के. जैन धार्मिक झगड़ों को मिटाने की हार्दिक इच्छा रखते हैं और उन्हें निश्चित रूप से अपने प्रयासों में सफलता मिलेगी और सौहार्दपूर्ण वातावरण निर्मित होने पर जैनसंघ अपने पुराने गौरव को प्राप्त करेगा। श्री नाहटा का यह सकारात्मक संकेत अत्यधिक सराहनीय और सभी पक्षों के लिए अनुकरणीय है।

जैनसमाज के राष्ट्रीय नेताओं का तीर्थसंरक्षण का उत्तरदायित्व केवल न्यायालय में मामला प्रस्तुत कर देने से ही पूरा नहीं हो जाता है। सभी घटक अपने तीर्थों के विवादों को हल करने के लिए केवल न्यायालय और वकीलों के ऊपर ही निर्भर न रहे। हमारे समाज के वरिष्ठ न्यायाधीश, प्रशासक पुलिस, आयकर अधिकारी एवं प्रबुद्ध व्यक्ति भी इन विवादों के समाधान में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका वहन कर सकते हैं। इस अभियान में समाज के सभी प्रमुख व्यक्तियों को अपनी भूमिका का निर्वाह करना चाहिए। तीर्थों के विवाद पर बहस का समय अब गुजर चुका है। अब गुणवत्तापूर्ण क्रियान्वयन एवं जवाबदेही का समय आ चुका है। एकता को हम सामाजिक गौरव का विषय बनायें। सभी पक्षों के बीच एकता का माहौल बनाने के लिए सतत प्रयास करें। एकता के प्रयत्नों को प्रोत्साहित करें।

हमारा नेतृत्व दिगम्बर और श्वेताम्बरों के बीच विद्यमान छोटे से छोटे संदेह को सतत बातचीत और संपर्क के माध्यम से दूर करे। हम ऐसे संदेहों की ओर

पूरा ध्यान दें। संदेह के बिन्दुओं पर बिना किसी संकोच के यथाशीघ्र चर्चा करें। सभी पक्ष दिल खोलकर आपस में मिलें। पूरा मुँह खोलकर बोलें। विशेषतः सभी संतजन और सभी नेतागण संदेह के चश्में को सदैव अपनी आँखों पर चढ़ाकर न रखें। ऐसे चश्में को अपनी आँखों के नीचे उतारे। अतीत में दोनों पक्षों के मन में घुसे संदेह के घुन को बाहर निकालें। ऐसे संदेह के द्वारा अपनी चेतना को कुतरने से बचाएँ। संदेह के धीमें जहर से छुटकारा पाने के लिए ठोस एवं प्रभावी प्रयत्न करें। हम अपनी उच्च स्तरीय चेतना और व्यक्तित्व को नए आयाम देते हुए पक्के तौर पर विश्वास करें कि कोई भी पक्ष निम्न स्तरीय कार्य नहीं करता है। संदेह के बिन्दु उठने पर संबंधित पक्ष के वरिष्ठ प्रतिनिधियों से अच्छी तरह से चर्चा कर सही बात की जानकारी प्राप्त करें।

मनशुद्धि, वचनशुद्धि और कायशुद्धि के उद्घोष के साथ हम समाज के सभी घटकों के बीच तालमेल बनायें। सभी के साथ प्रेम, आत्मीयता, उदारता और

सहानुभूतिपूर्ण संबंध बनायें। सभी को हार्दिक सहयोग दें। समाज के विभिन्न घटकों के बीच गलाकाट प्रतियोगिता, विसंगतिपूर्ण, विचारहीन और अविवेकपूर्ण परिस्थितियाँ जन्म न लेने दें। सभी के साथ संगठित और संघबद्ध होकर चलें। हमारी यह सामाजिक एकता विपरीत परिस्थितियों में हमें एकजुट बनाये रखेगी और विकास एवं प्रगति के नए आयाम खोल देगी। सच्चे मन से तालमेल की भावना और विचार हमें कुछ नया सोचने और नया करने के लिए प्रोत्साहित और प्रेरित करेंगे। नई योजना बनाने और अपने व्यक्तित्व की गहराई में झाँकने का अवसर प्रदान करेंगे। भगवान् महावीर की वाणी से ओतप्रोत मेरीभावना और सामायिक पाठ का हम प्रतिदिन पठन, मनन और चिंतन करें। अपने आंतरिक व्यक्तित्व का सदैव अवलोकन एवं मूल्यांकन करें। अति सहज, सुगम और सरल बनें। प्रतिदिन नए संकल्प के साथ सामाजिक एकीकरण के लिए छोटे से छोटा नया कार्य प्रारंभ करें। ऐसे विचारों और कार्यों से सामाजिक एकता को ऊर्जा प्रदान करें।

३० निशात कॉलोनी, भोपाल

## बुन रही मकड़ी समय की

मनोज जैन 'मधुर'

पूछकर तुम क्या करोगे  
मित्र मेरा हाल  
उम्र आधी मुश्किलों के  
बीच में काटी  
पेट की खातिर चढ़े हैं  
दर्द की घाटी  
पीर तन की खींच लेती  
रोज थोड़ी खाल  
कब हमें मिलती यहाँ  
कीमत पसीने की  
हो गई आदत घुटन के  
बीच जीने की  
इस उमर में पक गए हैं  
खोपड़ी के बाल

आग खाते हम, जहर के  
घूंट पीते हैं  
रोज मरते हम यहाँ  
हर रोज जीते हैं  
बुन रही मकड़ी समय की  
वेदना का जाल  
दर्द को हम ओढ़ते, सोते,  
बिछाते हैं  
रोज सपना दूर तक हम  
छोड़ आते हैं  
जी रहे अब तक बनाकर  
धैर्य को हम ढाल।

सी एस-१३, इन्दिरा कॉलोनी  
बाग उमराव दूल्हा  
भोपाल- ४६२०१० (म.प्र.)

# शंका-समाधान

सूतक-पातक

पं० जवाहरलाल जी भीण्डर (राज.)

**शंकाकार-** श्रीयुत आदेश्वरलाल सिंघवी, प्राध्यापक संस्कृत, भीण्डर।

**विस्तृत शंका-** असीम कृपा करके आप निम्न शंका का समाधान करने की कृपा करें। शंका सूतक पातक के विषय से सम्बद्ध है।

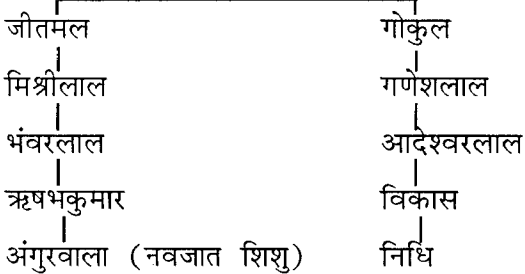
पं० मेधावीकृत धर्मसंग्रह श्रावकाचार के छठे अधिकार में (श्लोक २५७-२६१) तथा उसके बाद त्रिवर्णाचार, किशनसिंह क्रियाकोश में भी सूतकपातक का विधान है। व्रतविधानसंग्रह तथा प्रायश्चित्तसंग्रह में भी विधान है। तदनुसार सूतक पातक का काल प्रमाण पीढ़ियों के अनुसार निम्न है-

पीढ़ियाँ	जन्म का सूतक	मरण का सूतक
तीन पीढ़ी तक	१० दिन	१२ दिन
चौथी पीढ़ी	१० दिन	१० दिन
पाँचवीं पीढ़ी	६ दिन	६ दिन
छठी पीढ़ी	४ दिन	४ दिन
सातवीं पीढ़ी	३ दिन	३ दिन
आठवीं पीढ़ी	१ दिन रात	१ दिन रात
नौवीं पीढ़ी	२ प्रहर (छः घंटा)	२ प्रहर
दसवीं पीढ़ी	स्नान मात्र	स्नान मात्र

अब मुझे केवल प्रश्न यह करना है कि पीढ़ियाँ कैसे गिनी जाए-

जैसे निम्न वंशावली एक गृहस्थ की है-

**हेमराज सिंघवी**



उक्त आलेख चित्र के अनुसार स्व० हेमराज के दो पुत्र हुए जीतमल तथा गोकुल फिर जीतमल के पुत्र मिश्रीलाल, मिश्रीलाल के पुत्र भंवरलाल तथा भंवरलाल के पुत्र ऋषभकुमार हुए। अभी ऋषभकुमार के यहाँ पुत्री का जन्म (नाम अंगुरवाला) हुआ है। मिश्रीलाल जी, १ भंवरलाल, २ ऋषभलाल ३ अंगुरवाला ४ ये चारों जीवित हैं तथा एक ही परिवार में रहते हैं।

दूसरी ओर हेमराज के दूसरे पुत्र गोकुल थे। जिनके पुत्र गणेशलाल। गणेशलाल के पुत्र आदेश्वरलाल। आदेश्वरलाल के पुत्र विकास तथा विकाश की पुत्री निधि है। स्मरणीय है कि आदेश्वरलाल, विकास तथा निधि तीनों जीवित है तथा एक ही परिवार में रहते हैं।

१. ऐसी स्थिति में यह मार्गदर्शन करावें कि पीढ़ियों की गिनती कैसे की जाए? जीतमल की कौनसी पीढ़ी है? मिश्रीलाल की कौनसी पीढ़ी है? इस तरह चलते-चलते अंगुरवाला की कौन सी पीढ़ी होगी?

२. अंगुरवाला की उत्पत्ति (जन्म, प्रसूति) होने पर श्री आदेश्वरलाल का प्रश्न है कि आदेश्वरलाल को कितने दिनों का सूतक लगेगा?

३. अंगुरवाला के जन्म पर, अंगुरवाला को आदेश्वरलाल पाँचवीं पीढ़ी माने या चौथी पीढ़ी या दूसरी पीढ़ी? क्योंकि मिश्रीलाल से अंगुरवाला पर्यन्त की चार पीढ़िये जीवित हैं तथा एक ही संयुक्त परिवार में रहते हैं।

४. आदेश्वर, विकास तथा निधि ये तीनों पीढ़ियाँ जीवित हैं तथा एक ही परिवार में संयुक्त रहते हैं अतः इन तीनों को तो एक ही प्रकार का सूतक-पातक लगेगा। यह बात तो तर्क से ठीक बैठती है क्योंकि एक ही मटकी का पानी पीनेवाली ये ३ पीढ़ियाँ भिन्न-भिन्न (असमान) दिनों का सूतक पातक पाले, यह बात तो तब तक नहीं बन सकती, जब तक तक ये अलग-अलग नहीं रहने लगे।

इस प्रकार जिनके यहाँ प्रसूति नहीं है, (परन्तु अन्य जनों-वंशजो-गोत्रियों के यहाँ प्रसूति हुई है) ऐसे एक संयुक्त परिवारी पिता, पुत्र, पौत्र को तो समान दिनों का सूतक तर्क बल से मानना न्याय संगत पड़ता है। परन्तु जिनके यहाँ प्रसूति हुई है और उस प्रसूतिगृह में संयुक्त परिवार है तथा चार पीढ़ी तक का प्रौढ़तम व्यक्ति जीवित है, वैसी स्थिति में समस्या यह आती है कि पीढ़ी की गिनती कैसे की जाए? जिसे गिनकर अन्य सगोत्री सूतक पालें।

मूल तथा मुख्य प्रश्न यह है कि आदेश्वरलालजी को कितने दिनों का सूतक मानना चाहिए, जबकि अंगुरवाला नामक पुत्री की उत्पत्ति हुई है। यहाँ स्मरणीय है कि मिश्रीलाल से अंगुरवाला तक की ४ पीढ़ियाँ जीवित हैं तथा संयुक्त परिवार स्वरूप हैं?

यथासंभव आगमप्रमाण सहित या स्व-अनुभव से उत्तर देकर महान् अनुग्रह करें, इतनी करबद्ध प्रार्थना है।

### समाधान

**विभिन्न समाधान-** (अ) १. पूज्य विशुद्धमति जी माताजी (तिलोय-पण्णती टीकाकार) कहती हैं कि अंगुरवाला की उत्पत्ति पर आदेश्वरलाल को १० दिनों का सूतक लगेगा। इनके मतानुसार जिनके घर सन्तान हुई है उसकी पीढ़ियाँ नहीं गिनकर, जिनको सूतक पालना है वह अपनी पीढ़ियाँ गिने। यानी आदेश्वर आदेश्वर की पीढ़ियाँ गिने, तो गोकुल १, गणेशलाल २ तथा आदेश्वर ३ इस तरह आदेश्वर तीसरी पीढ़ी में है। अतः तीन पीढ़ीवालों को १० दिन का सूतक लगेगा। इस तरह माताजी पीढ़ियाँ 'गोकुल' से गिनती हैं तथा जिस घर में सन्तान हुई हो उस तरफ की पीढ़ियाँ नहीं गिनकर, सामनेवाले की पीढ़ियाँ गिनकर सूतककाल का विचार करती हैं।

(ब) पूज्य ब्र. सर्वोपरि प्रतिष्ठाचार्य बाबाजी सूरजमलजी निवाई (टोंक) राज० का भी यही मत है कि श्री आदेश्वरलाल सिंघवी को दस दिन का सूतक पालना पड़ेगा। इतनी विशेषता है कि वह कहते हैं कि पीढ़ियाँ हेमराज से गिननी चाहिए। यही बात स्व० आचार्य वीरसागरजी जी कहते थे तथा चा०चा० स्व० शान्तिसागर महाराज भी केवला (महाराष्ट्र) प्रवास के समय कहते थे, अतः आदेश्वर चौथी पीढ़ी में है। और चौथी पीढ़ी का १० दिन का सूतक उसे पालना होगा। यथा हेमराज १, गोकुल २, गणेश ३, आदेश्वर ४, इस तरह चौथी पीढ़ी हुई।

इस प्रकार १०५ विशुद्धमतिजी तथा बाबा सूरजमल जी दोनों समान रूप से आदेश्वर के लिए १० दिनों का सूतक बताते हैं।

**समाधान-** (२) १०८ गणधराचार्य कुन्थुसागर तथा ब्र० पं० जगन्मोहनलालजी सिं० शास्त्री कटनी (जबलपुर) का कहना है कि पीढ़ियाँ हेमराज से ही गिनी जानी चाहिए। दूसरी बात वे यह कहते हैं कि पीढ़ियाँ उसी की गिननी चाहिए जिसके घर प्रसूति (सन्तानोत्पत्ति) हुई है। इसतरह हेमराज से अंगुरवाला छठी पीढ़ी होती है। तथा छठी पीढ़ी का सूतक चार दिनों प्रमाण ही होने से आदेश्वर को ४ दिन का सूतक ही लगेगा। इनका यह भी कहना है कि चाहे मिश्रीलाल जीवित हो, परन्तु पीढ़ियाँ अंगुरवाला तक गिनी ही जाएँगी। ये बड़े वैज्ञानिक-तर्कों से सिद्ध करते हैं कि पीढ़ियाँ

अंगुरवाला तक इसलिए गिनी जाएँगी, क्योंकि प्रत्येक पीढ़ी में खून बदलता जाता है, दायित्व बदल जाते हैं तथा मोह भिन्न होता जाता है।

**नोट-** वयोवृद्ध प्रतिष्ठाचार्य श्रद्धेयतम पं० नाथूलाल जी शास्त्री साहब इन्दौर का भी यही मत है। वे लिखते हैं कि हेमराज से अंगुरवाला छठी पीढ़ी होने से आदेश्वर को छठी पीढ़ी का ४ दिन प्रमाण ही सूतक लगेगा। हाँ, यदि मिश्रीलाल जी तथा आदेश्वर जी का परिवार संयुक्त परिवार के रूप से रहते हैं- साथ-साथ रहते हैं, तो आदेश्वर को १० दिनों का सूतक लगेगा।

**विशेष-** किशनदास कृत क्रियाकोष के अनुसार कुटुम्बी आदेश्वर को ५ दिन का सूतक लगेगा। यह भिन्न मत है।

इस प्रकार आ. कुन्थुसागर जी ब्र० जगन्मोहनलाल जी तथा प्रतिष्ठाचार्य नाथूलाल जी शास्त्री। इन तीनों का लगभग एक समान मत है।

**समाधान (३)** स्व० आ० महावीरकीर्ति जी महाराज आ० १०८ विमलसागर जी महाराज (उनका सम्पूर्ण संघ) तथा आ० सुमति सागर महाराज (तथा उनका सकल संघ) मधुबन-शिखरजी तथा आ० १०८ संभवसागर महाराज (त्रियोग आश्रम): इन सब आचार्यों का मत भी समाधान नं. २ से मिलता जुलता ही है। अन्तर मात्र इतना ही है कि ये चारों आचार्यश्री पीढ़ियाँ हेमराज से न गिनकर जीतमल से गिनते हैं। इस तरह इन चार आचार्यों (पूज्य महावीरकीर्ति, विमलसागर, सुमतिसागर, संभवसागर चतुष्टय) के मतानुसार अंगुरवाला की उत्पत्ति पर आदेश्वर को, ६ दिन का सूतक लगेगा। क्योंकि जीतमल से अंगुरवाला पाँचवी पीढ़ी में आती है। अतः पाँचवी पीढ़ीवालों को ६ दिन का सूतक पालना है पाँच पीढ़ी इस तरह हैं- जीतमल १, मिश्रीलाल २, भंवरलाल ३, ऋषभकुमार ४, अंगुरवाला ५। इन आचार्यों के मत से भी जिनके यहाँ प्रसूति हुई हो उसी के घर की पीढ़ियाँ (जीतमल से अंगुरवाला तक) गिनी जाती हैं। चाहे बुजुर्ग जीवित हों, पीढ़ियाँ तो नवजात शिशु तक ही गिनी जाएँगी, और तदनुसार ही सूतक का निर्णय होगा। यह इन आचार्यचतुष्टय का मत है।

**जवाहरीय नोट-** मैंने सूतक पातक सम्बन्धी उक्त विविध विद्वानों के समाधान प्राप्त करने में वचनातीत परिश्रम किया है। इन सब समाधानों को प्राप्त करने में मुझे लगभग वर्ष भर लगा है। आशा है पाठक, श्रावक इस समाधान से लाभान्वित होंगे।

## जिज्ञासा-समाधान

पं. रतनलाल बैनाड़ा

**प्रश्नकर्ता-** सतीशचन्द्र जैन, किरावली।

**जिज्ञासा-** तीर्थकर की दिव्यध्वनि दिन में कितनी बार खिरती है?

**समाधान-** इस सम्बन्ध में आचार्यों के विभिन्न मत हैं। जैसे- १. तिलोपपण्णत्ति में इस प्रकार कहा है-  
पठादीए अक्खलिओ संझत्तिदयम्मि णवमुहुत्ताणि।

णिस्सरदि णिरूवमाणो दिव्वझुणी जाव जोयणयं ॥ १०३ ॥  
सेसेसु सम एसुं गणहर देविंदचक्कवट्टीणं।

पण्हाणु रूपमत्तं दिव्वझुणी आ सत्त मंगीहि ॥ १०४ ॥

**अर्थ-** भगवान् जिनेन्द्र की स्वभावतः अस्खलित और अनुपम दिव्य ध्वनि तीनों संध्याकाल में ९ मुहूर्त तक निकलती है। (अर्थात् ९ मुहूर्त=१८ घड़ी=६-६ घड़ी तीन बार) और एक योजन पर्यंत जाती है। इससे अतिरिक्त गणधर देव इन्द्र अथवा चक्रवर्ती के प्रश्नानुरूप अर्थ के निरूपणार्थ वह दिव्यध्वनि शेष समयों में भी निकलती है।

२. श्री अनगारधर्माभूत पृष्ठ-९ पर इस प्रकार कहा है-

पुव्वण्हे मज्झण्हे अवरण्हे मज्झिमाए रत्तीए।

छच्छघडियाणिगगय दिव्वझुणी कहइ सुत्तथे ॥

**अर्थ-** यह दिव्यध्वनि प्रातः, मध्याह्न, सायं और रात्रि के मध्य में छह-छह घड़ी तक अर्थात् एक बार में एक घण्टा ४४ मिनट तक खिरती है, ऐसा आगम में कथन है।

३. श्रीशुभचन्द्र रचित 'अंगप्रज्ञप्ति' में इस प्रकार कहा है-

तित्थयरस्स तिसंज्जे णाहस्स, सुभज्झिमाय रत्तीए।

बारह सहासु मज्जे छघडिया, दिव्व झुणि कालो ॥ ४१ ॥

होदि गणि चक्किमहवथ णहादो, अण्णदाब्बि दिव्वं झुणि।

**अर्थ-** तीर्थकर नाथ का बारह सभाओं में दिव्यध्वनि काल तीनों संध्या और अर्द्धरात्रि में छह-छह घड़ी का है। तथा गणधर, चक्रवर्ती, इन्द्र के प्रश्न से अन्य समय में भी दिव्यध्वनि हो जाती है।

४. गोम्मटसार जीवकाण्ड की गाथा नं. ३५६-३६१ की टीका में भी उपर्युक्त प्रकार से ही, दिन में छह-छह घड़ी चार बार होने का उल्लेख किया गया है।

५. श्री जयधवला पु.१ पृष्ठ १२६ पर इस प्रकार

कहा है-

'वह दिव्यध्वनि सर्वभाषामयी है, अक्षर-अनक्षरात्मक हैं, जिसमें अनन्त पदार्थ समाविष्ट हैं ( अनन्त पदार्थों का वर्णन है), जिसका शरीर बीज पदों से घड़ा गया है, जो प्रातः मध्याह्न और सायंकाल इन तीन संध्याओं में छह-छह घड़ी तक निरन्तर खिरती रहती है। और उक्त समय को छोड़कर इतर समय में गणधर देव संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय को प्राप्त होने पर उनके संशय आदि को दूर करने का जिसका स्वभाव है, संकर और व्यतिकर दोषों से रहित होने के कारण जिसका स्वरूप विशद है और अध्ययनों के द्वारा धर्मकथाओं का प्रतिपादन करना जिसका स्वभाव है, इस प्रकार स्वभाववाली दिव्यध्वनि समझनी चाहिए।'

उपर्युक्त प्रमाणों के अनुसार विभिन्न आचार्य दिव्यध्वनि का काल छह-छह घड़ी चार बार तथा छह-छह घड़ी तीन बार, इस प्रकार निरूपण करते हैं।

**जिज्ञासा-** भरत चक्रवर्ती ने कैलाश पर्वत पर २४ जिनालय बनवाये थे या ७२ बनवाये थे?

**समाधान-** इस संबंध में निम्न प्रमाण द्रष्टव्य हैं-

१. उत्तरपुराण सर्ग-४८ में इसप्रकार कहा है-

राज्ञाप्याज्ञापिता यूयं कैलासे भरतेशिना।

गृहाः कृता महारलैश्चतुर्विंशतिरर्हताम् ॥ १०७ ॥

तेषां गङ्गां प्रकुर्वीच्चं परिखां परितो गिरिम्।

इति तेऽपि तथा कुर्वन् दण्डरत्नेन सत्वरम् ॥ १०८ ॥

**अर्थ-** तब राजा ने आज्ञा दी कि भरत चक्रवर्ती ने कैलास पर्वत पर महारत्नों से अरहन्त देव के चौबीस मंदिर बनवाये हैं, सो तुम लोग उस पर्वत के चारों ओर गंगा नदी को उन मंदिरों की परिखा बना दो। उन राजपुत्रों ने भी पिता की आज्ञानुसार दण्डरत्न से वह काम शीघ्र ही कर दिया।

२. कार्तिकेयानुप्रेक्षा पृष्ठ २४७ पर परिग्रहपरिमाण व्रत में प्रसिद्ध जयकुमार की कथा में इसप्रकार कहा है-

'एक बार जयकुमार और सुलोचना कैलास पर्वत पर भरत चक्रवर्ती के द्वारा स्थापित २४ जिनालयों की वन्दना करने के लिए गये।'

३. रत्नकरण्डश्रावकाचार के श्लोक नं. ६४ की

टीका करते हुए पं० सदासुखदास जी ने कैलाश पर्वत पर २४ जिनालयों का उल्लेख किया है।

इस प्रकार उपर्युक्त प्रमाणों के अनुसार भरत चक्रवर्ती ने कैलाश पर्वत पर २४ जिनालय बनवाये थे। ७२ जिनालय बनवाने के निम्न प्रमाण भी उपलब्ध होते हैं।

१. भरतेश वैभव भाग-३, पृष्ठ-१०२ पर इस प्रकार कहा है- 'कैलाश पर्वत पर सम्राट की आज्ञानुसार ७२ जिनमन्दिरों का निर्माण हुआ।'

२. ब्र० लामचीदास द्वारा लिखित 'कैलाशयात्रा का वर्णन' की पाण्डुलिपि प्राप्त हुई है, जिसके अनुसार लगभग २५० वर्ष पूर्व, वे एक व्यंतर देव के द्वारा कैलाश पर्वत पर ले जाये गये थे और उन्होंने स्वयं अपनी आँखों से भरत चक्रवर्ती द्वारा बनवाये गये स्वर्ण और रत्नमयी ७२ जिनालयों का साक्षात् दर्शन किया था।

३. पं० भूधरदास जी ने 'चर्चा समाधान' पृष्ठ-१०८ पर लिखा है कि भरत जी ने कैलाश पर्वत पर एक चैत्यालय कराया है, जिसके सम्बन्ध में 'तीणी चउवीसीय भरहणिमाविंयं' यह पाठ मिलता है, जिसका अर्थ यह है कि महाराजा भरत के जिनालय में तीन चौबीसी के ७२ जिनबिम्ब कहे हैं।

पाठकों को उपर्युक्त संदर्भों पर विचार करना उचित है।

**प्रश्नकर्ता-** मोहनलाल जैन धूलियागंज, आगरा।

**जिज्ञासा-** उपशम सम्यक्त्व के काल में तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध होता है या नहीं?

**समाधान-** इस प्रश्न के उत्तर में गोम्मटसार कर्मकाण्ड में इसप्रकार कहा है-

पढमुवसमिये सम्मे सेसतिये अविरदादिचत्तारि।

तित्थयरबंधपारंभया णरा केवलिदुगंते॥ १३॥

**अर्थ-** प्रथमोपशम अथवा द्वितीयोपशम सम्यक्त्व में तथा क्षायोपशमिक या क्षायिकसम्यक्त्व में असंयत से अप्रमत्तगुणस्थान पर्यन्त मनुष्य ही तीर्थंकरप्रकृति के बन्ध का प्रारम्भ केवली अथवा श्रुतकेवली के पादमूल में करते हैं।

उपर्युक्त गाथा के अर्थ के अनुसार प्रथमोपशम सम्यक्त्व में तीर्थंकर प्रकृति के बन्ध का उल्लेख है, परन्तु इस गाथा के विशेषार्थ में कहा गया है, 'यहाँ पर प्रथमोपशम सम्यक्त्व को पृथक् करने का कारण यह

है कि इसका काल अन्तर्मुहूर्त होने से इस सम्यक्त्व में सोलहकारण भावना नहीं भा सकते। अतः इस सम्यक्त्व में तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध नहीं होता ऐसा किसी का अभिप्राय हो यही विचार करके पृथक् कहा।' इस प्रकार किन्हीं आचार्यों ने कहा है।

इससे स्पष्ट होता है कि प्रथमोपशम सम्यक्त्व के काल में तीर्थंकर प्रकृति के बन्ध होने के सम्बन्ध में एक मत नहीं है।

**जिज्ञासा-** अपहृत संयम और उपेक्षा संयम में क्या अंतर है?

**समाधान-** कार्तिकेयानुप्रेक्षा गाथा-३९९ की टीका में इसप्रकार कहा है- 'संयम के दो भेद हैं- उपेक्षा संयम और अपहृत संयम। उनमें तीन गुणियों का पालक मुनि कायोत्सर्ग में स्थित होकर जो रागद्वेष का त्याग करता है, उसके उपेक्षा संयम होता है। उपेक्षा का मतलब उदासीनता अथवा वीतरागता है।'

अपहृत संयम के तीन भेद हैं-

१. अपने उठने-बैठने के स्थान में यदि किसी जीव-जन्तु को बाधा पहुँचती हो, तो वहाँ से स्वयं हट जाना उत्कृष्ट अपहृतसंयम है।

२. कोमल मयूर पिच्छिका से उस जीव को हटा दे, तो मध्यम अपहृत संयम है।

३. लाठी तिनके वगैरह से उस जीव को हटाये, तो जघन्य अपहृत संयम है।

अपहृतसंयमी मुनि को पाँच समितियों का पालन करना ही होता है।

**जिज्ञासा-** क्या कृष्ण लेश्या के साथ तीर्थंकरप्रकृति का बंध संभव है या नहीं?

**समाधान-** श्री धवला पु. ८, पृष्ठ ३३२ पर इस प्रकार कहा है-

“तत्थ हेट्ठिमइंदए णीललेस्सासहिए तित्थयर-संतकम्मियमिच्छाइट्ठीणमुववादाभावादो। --- तित्थयर-संतकम्मियमिच्छाइट्ठीणं णेरइएसुववज्जमाणणं सम्मा-इट्ठीणं व काउलेस्सं मोत्तूण अण्णलेस्साभावादो वा ण णीलकिण्ह-लेस्साए तित्थयरसंतकम्मिया अत्थि।”

**प्रश्न-** (कृष्ण, नील लेश्या में इसका बंध क्यों संभव नहीं है)। उत्तर- नील लेश्या युक्त अधस्तन इन्द्रक में तीर्थंकरप्रकृति के सत्त्ववाले मिथ्यादृष्टियों की उत्पत्ति का अभाव है। अथवा नारकियों में उत्पन्न होनेवाले

तीर्थकर संतकर्मिक मिथ्यादृष्टि जीवों के सम्यग्दृष्टियों के समान कापोत लेश्या को छोड़कर अन्य लेश्याओं का अभाव होने से नील और कृष्ण लेश्या में तीर्थकर की सत्तावाले जीव नहीं होते हैं।

**जिज्ञासा-** क्या मुनियों को अपनी जन्मजयन्ती मनाना उचित है?

**समाधान-** योगसारप्राभृत, अधिकार ८ के श्लोक नं. १८ में इसप्रकार कहा है-

**भवाभिनन्दिनः केचित् सन्ति संज्ञा-वशीकृताः।**

**कुर्वन्तोऽपि परं धर्म लोक-पङ्क्ति-कृतादराः ॥ १८ ॥**

**अर्थ-** कुछ मुनि परम धर्म का अनुष्ठान करते हुए भी भवाभिनन्दी होते हैं, जो कि संज्ञाओं के वशीभूत हैं और लोगों के आराधने रिझाने आदि में रुचि रखते हुये प्रवृत्त होते हैं।

उपर्युक्त श्लोकार्थ की व्याख्या करते हुए पं० जुगल किशोर जी मुख्तार ने लिखा है कि आहारसंज्ञा के वशीभूत मुनि बहुधा ऐसे घरों में भोजन करते हैं, जहाँ अच्छे रुचिकर एवं गरिष्ठ स्वादिष्ट भोजन के मिलने की अधिक सम्भावना होती है, उद्दिष्ट भोजन के त्याग की, आगमोक्त दोषों के परिवर्जन की कोई परवाह नहीं करते, भोजन करते समय अनेक बाह्य क्षेत्रों से आया हुआ भोजन भी ले लेते हैं, जो स्पष्ट आगमाज्ञा के विरुद्ध होता है। भय-संज्ञा के वशीभूत मुनि अनेक प्रकार के

भयों से आक्रान्त रहते हैं, परीषहों से घबराते तथा वनवास से डरते हैं, जबकि सम्यग्दृष्टि सप्त प्रकार के भयों से रहित होता है। मैथुन संज्ञा के वशीभूत मुनि ब्रह्मचर्य महाव्रत को धारण करते हुए भी गुप्त रूप से उसमें दोष लगाते हैं। और परिग्रह संज्ञावाले साधु अनेक प्रकार के परिग्रहों की इच्छा को धारण किये रहते हैं, पैसा जमा करते हैं, पैसे का ठहराव करके भोजन करते हैं, अपने इष्टजनों को पैसा दिलाते हैं, पुस्तकें छपा-छपाकर बिक्री करते-कराते रुपया जोड़ते हैं, तालाबन्द बॉक्स रखते हैं, बॉक्स की ताली कमण्डलु आदि में रखते हैं, पीछी में नोट छिपाकर रखते हैं, अपनी पूजाएँ बनवाकर छपवाते हैं और अपनी जन्मगाँठ का उत्सव मनाते हैं। ये सब लक्षण उक्त भवाभिनन्दियों के हैं, जो आजकल अनेक मुनियों में लक्षित भी होते हैं।

उपर्युक्त संदर्भ के अनुसार मुनियों द्वारा अपनी जन्मजयन्ती मनाना कदापि उचित नहीं है। मुनियों को मुनिदीक्षा के समय द्विजन्मा कहा जाता है। अर्थात् उनका नवीन जन्म माना जाता है और तदनुसार उनका नाम भी नवीन रखा जाता है। अतः असंयम अवस्था के जन्म को स्मरण करना कैसे उचित माना जाय? पू. आचार्य विद्यासागर जी महाराज, कभी भी अपनी पर्याय का जन्म दिवस नहीं मनाते हैं।

1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी,  
आगरा (उ.प्र.)

## शरीर धर्म का साधन

भारत के सभी दर्शन, धर्म जीने की कला सिखाते हैं, लेकिन जैनदर्शन जीने के साथ-साथ मरने की कला भी सिखाता है- अब तुम्हारा मरण हो तो ऐसा हो कि पुनः मरण शेष न रह जावे। इसका नाम है समाधिमरण इसको समझने के लिए महान् आत्माओं के जीवन की ओर दृष्टिपात करना चाहिए।

सर्वोदय तीर्थ अमरकण्ठक में 'रत्नकरण्डक श्रावकाचार' की क्लास चल रही थी। उस वक्त आचार्य-श्री ने बताया कि एक स्वस्थ व्यक्ति हमारे पास आये और बोले-आचार्य श्री मुझे अभी सल्लेखना दे दो, ताकि मैं अच्छे ढंग से उपवास करके शरीर छोड़ सकूँ, वरना क्या पता बुढ़ापे में कोई रोग घेर गया, तो क्या करेंगे। आचार्य श्री ने कहा- शरीर को ऐसा नहीं छोड़ा जाता। शरीर माध्यम है धर्म का, संयम पालने का। जल्दी समाधि लेकर क्या करोगे? स्वर्ग जाओगे, वहाँ तो असंयम के साथ रहना होगा। कुछ दिन संयम के साथ शरीर की देखरेख करो, बाद में जब संयम पालने में बाधा पड़ने लगे, तो शरीर को छोड़ा जाता है, समाधि ली जाती है। एकदम शरीर को नहीं छोड़ा जाता। शरीर को छोड़ना मात्र समाधि नहीं है, बल्कि कषाय को छोड़ना ही सही समाधि मानी जाती है।

मुनि श्री कुंथुसागरकृत 'संस्मरण' से साभार

# नारेली में श्रावक संस्कार शिविर

अखिल भारतवर्षीय श्री दिगम्बर जैन ज्ञानोदयतीर्थ क्षेत्र नारेली (अजमेर, राज.) में प.पू. मुनिपुंगव १०८ श्री सुधासागर जी महाराज ससंघ का भव्य ऐतिहासिक चातुर्मास हो रहा है। कमेटी द्वारा पूर्व निर्धारित आध्यात्मिक, धार्मिक अनुष्ठानों के साथ पर्वाधिराज पर्येषण पर्व के पावन प्रसंग पर दस दिवसीय 'श्रावक संस्कार शिविर' समायोजित किया गया।

१७वें शिविर में भारतवर्ष भर से लगभग नौ सौ (९००) शिविरार्थियों ने भाग लिया। दिनांक ४.९.२००८ को प्रातः ध्वजारोहण एवं मंगलकलश स्थापना से शुभारम्भ हुआ। इस शिविर के पुण्यार्ज्व श्रेष्ठी श्री पूरनचन्द्र जी देवेन्द्र कुमार जी सुथनियाँ अजमेर एवं श्रेष्ठी श्री कपूरचंद नाथूलाल जी पल्लीवाल अजमेर ने सातिशय पुण्याजन किया।

ज्ञातव्य रहे दोनों ही पुण्यार्जकों ने पिछले १४ शिविरों में शिविरार्थी बनकर शिविर में दिये जानेवाले संस्कार अर्जित किये, परिणामतः उनके मनोभावों का समादार करते हुए अपार जनसमूह के समक्ष मुनिश्री ने आशीर्वाद दिया।

प्राकृतिक मनोहारी छटाओं से परिपूर्ण बहुआयामी क्षेत्र परिसर में शिविरार्थियों के आवास आदि की समुचित व्यवस्था की गई। नव निर्मित विशाल संतशाला में उनके लिये आवास व्यवस्था की गई।

शिविरार्थी ३.५० बजे उठकर सुप्रभात विनय प्रार्थना ४ से ४.४५ बजे स्नानादि से निवृत्त होकर ५ बजे से आदिनाथ मंदिर के प्रागण में ध्यानकक्षा में शामिल होते थे।

प्रातः ६ बजे से ७.४५ बजे तक विशाल पाण्डाल में गीत, संगीत के साथ सामूहिक जिनपूजा, इससे पूर्व शान्ति-धारा प्रातः ८ बजे से ९.४५ बजे तक शिविरार्थियों को गहन अध्ययन प्रशिक्षण। 'द्रव्य संग्रह' की कक्षा स्वयं मुनिश्री सुधासागर जी महाराज लेते थे। मुनि श्री के द्वारा इस कक्षा में शिविरार्थी इतना निमग्न एवं केन्द्रित हो जाता था, कि ऐसा लगता था जैसे सहस्राधिक व्यक्ति मौन होकर मात्र श्रवण करते हुए हृदयंगम कर रहे हों।

प्रातः १० बजे आहारचर्या, शिविरार्थी त्यागी व्रतियों की भांति मौन रहकर श्रावक के सादर अनुनय पर उनके घर आहार हेतु जाते थे। श्रावकजन शिविरार्थियों को किशनगढ़, नसीराबाद तक ले जाते थे।

उसके पश्चात् प्रतिक्रमण, पढ़ाये गये विषयों का अध्ययन आदि। मध्याह्न २ बजे से २.४५ तक 'तत्त्वार्थसूत्र' की पूजा होती थी। शिविरार्थी इसमें अर्घसमर्पण हेतु भाग

ले सकते थे।

अपरान्ह ३ बजे से मुनि श्री सुधासागर जी महाराज का मार्मिक दस धर्म पर प्रवचन।

सायं ५ बजे जलपान, पानी, दूध व फल जो भी शिविरार्थी लेना चाहे। सायं ६ से सामूहिक प्रतिक्रमण, गुरु सान्निध्य में उसके पश्चात् गुरु वन्दना, आचार्य भक्ति एवं तत्पश्चात् सामूहिक आरती। संगीत के साथ आरती में भक्तजन भाव विभोर हो जाते थे।

७.३० बजे 'द्रव्यसंग्रह' पर अलग-अलग ग्रुप के अनुसार अलग-अलग स्थान पर कक्षा लगाई जाती थी। ६ स्थानों पर छः ग्रुप 'द्रव्यसंग्रह' पर अध्ययन कराते थे। रात्रि ९ बजे कक्षा समाप्ति के पश्चात् ४५ मिनट तक अध्ययन में पढ़ाये गये विषय को याद करना आदि।

रात्रि ठीक १० बजे पूर्णतया विश्राम। इस प्रकार प्रभात में ३.५० बजे से रात्रि १० बजे तक शिविरार्थी कार्यक्रमानुसार समय के साथ इस प्रकार व्यस्त हो जाता था, मानो घर परिवार आदि सब को छोड़कर चतुर्थकालीन आश्रम में मात्र अध्ययन, स्वाध्याय एवं संस्कारित होने आया हो।

करुणा के सागर, कृपानिधान, वात्सल्यता की जीती जागती मूर्ति प्रातः स्मरणीय गुरुदेव श्री सुधासागर जी महाराज ने प्रत्येक शिविरार्थी को कुम्हार पद्धति से घट को इस प्रकार घड़ दिया कि उस माटी के घड़े से मात्र शीतल जल ही मिलेगा, जो पिपासुओं की प्यास बुझायेगा। प्रत्येक शिविरार्थी को इस प्रकार सुसंस्कारित कर देते हैं कि, उस शिक्षा, दीक्षा व जीवन जीने की कला को व्यक्ति जीवन पर्यन्त कभी भी विस्मरण नहीं कर सकता।

शिविरार्थी व्यक्तिगत संकल्प लेकर जाते हैं कि, जो संस्कार गुरुदेव ने डाले हैं हम आजीवन उन नियमों, व संयम का परिपालन करेंगे।

अंत में इस प्रकार के शिविर में व्यक्ति निश्चित ही संस्कारित होकर जाता है। देव-शास्त्र-गुरु की सच्ची पहचान का सूत्र सीख कर जाता है। यही नहीं पढ़ाये गये विषयों की परीक्षा लिखित होती है। शिविरार्थियों में यह भावना जागृत रहती है कि मैं परीक्षा में अधिक से अधिक अंक प्राप्त करूँ। पिछले १७ शिविरों में हजारों व्यक्ति संस्कारित हुए, यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि है।

प्रस्तुति-भीकमचन्द्र पाटनी,  
अजमेर 'शिविर परामर्शक'



## पुलिस-निरीक्षिका जैन युवती का सूझबूझभरा प्रयास



डॉ० कुमारी रेखा जैन, जिन्होंने परम पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी से ब्रह्मचर्यव्रत ग्रहण किया है, मध्यप्रदेश पुलिस सेवा में निरीक्षिका के पद का उत्तरदायित्व वहन कर रही हैं। कुछ ही समय पहले वे अपनी कार्यदक्षता के फलस्वरूप टी. आई. के पद पर पदोन्नत हुई हैं और वर्तमान में सागर (म.प्र.) में महिला थाना प्रभारी हैं।

चूँकि वे पुलिसनिरीक्षिका हैं और पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी से एवं धर्म से जुड़ी हुई हैं, इसलिए उनके मन में यह पीड़ा रहती थी कि मन्दिरों में अपने जिनदेव कैसे सुरक्षित किये जाएँ, उन्हें चोरी से कैसे बचाया जाय? और इस पीड़ा से मुक्ति पाने में उन्हें मिल गये अच्छे अफसर और अच्छे अवसर, तब उन्होंने ठान लिया कि कम से कम सागर जिले से इस समस्या को छुटकारा मिले। उन्होंने पब्लिक-पुलिस-प्रेस का अभियान चलाया और जनजागृति लाने के लिए कई कार्यक्रम आयोजित किये, जिनमें जनता, प्रेस और प्रशासन को आमंत्रित किया, लोगों के विचारों को जाना। सभी इस समस्या से परेशान थे। सभी अपने आराध्य को बचाना चाहते थे, तब उन्होंने एक संकल्पपत्र भरवा कर, एक महावीर सिक्कूरिटी एजेंसी से संपर्क कर चौकीदारों की भर्ती की, जो सभी हैल्थ-हाइट में अच्छे और पढ़े-लिखे थे, रोजगार की तलाश में थे। ४२ चौकीदारों को शहर के ५२ जैन मन्दिरों एवं हिन्दू मंदिरों में तैनात कर दिया। जनता ने करीब ८४००० रुपयों का भुगतान इन चौकीदारों को करने के लिए अपने संकल्प पत्र भरे। प्रत्येक चौकीदार का २००० वेतन हुआ। इस कार्यक्रम को प्रारंभ करने में करीब डेढ़ माह लगा और अनेकों सभाएँ करनी पड़ीं, लेकिन मुख्यता से रवीन्द्रभवन सागर, बंडा, शाहगढ़, मालथौन और बाँदरी ग्राम में सभाएँ आयोजित कीं। आज इन चौकीदारों को शहर में चौकीदारी करते करीब सवा माह हो गया। अभूतपूर्व रिजल्ट मिले। शहर में चोरियों का ग्राफ गिर गया। किसी भी मंदिर में एवं उन मुहल्लों में चोरियाँ नहीं हुईं, जहाँ ये चौकीदार कार्य कर रहे हैं। एक माह समाप्त होते ही जनता ने इन चौकीदारों को वेतन का भुगतान कर दिया। और पुनः उत्साह एवं उमंग के साथ चौकीदार कार्य पर लगे हैं। चौकीदार रात ९ बजे से सुबह ६ बजे तक मंदिर एवं आसपास के रहवासी क्षेत्र में अपनी सेवाएँ दे रहे हैं।

यह कार्य अत्यन्त कठिन था, लेकिन सागर में अखिल भारतीय दिगम्बर जैन महिला परिषद् ने अभूतपूर्व एकता दिखालाई। ये उसी महिला परिषद् की सदस्याएँ हैं, जिन्होंने पिछली १७ फरवरी को आ. श्री विद्यासागर जी महाराज के सान्निध्य में एक विशाल महिला सम्मेलन सागर में किया था। और सभी ने संकल्प लिया था कि हम धार्मिक कार्यों में रुचि लेकर देव-शास्त्र-गुरु की सेवा करेंगे। इन्होंने दिन रात मेहनत करके लोगों से संकल्प पत्र भरवाये। चूँकि डॉ० रेखा जैन पुलिस अधिकारी हैं, इसलिए प्रशासन का इनको पूर्ण सहयोग रहा। वहाँ के अधिकारी जैसे एस० पी० डॉ० हरिसिंह यादव, एडीशनल एस० पी० श्री तिकल सिंह एवं अन्य अधिकारियों ने जब भी इन्होंने समय चाहा, दिया एवं जब भी इन्होंने गाँव-गाँव जाकर प्रोग्राम रखे, वहाँ पहुँचकर इन्होंने भी चौकीदार रखने की बात कही। पब्लिक-पुलिस-प्रेस के इस कार्यक्रम से यह कार्य सम्पन्न हुआ।

यह एक ऐतिहासिक कार्यक्रम बना। क्योंकि समस्याओं को सुनानेवाले बहुत मिलते हैं, लेकिन समस्याओं का हल ढूँढ़ने और सहयोग करनेवाले कम मिलते हैं। कभी-कभी कुछ कदम ऐसे होते हैं, जो इतिहास बदल देते हैं। ऐसा ही एक कार्य डॉ० रेखा जैन के मार्ग-दर्शन में सागर की जनता ने कर दिखाया और अब पूरी उम्मीद है कि जैन एवं हिन्दू मन्दिरों में चोरियाँ नहीं होंगी। कार्य कठिन था, लेकिन करने योग्य था और यह असंभव कार्य संभव हो गया गुरुदेव आचार्य श्री विद्यासागर जी के आशीर्वाद से।

सम्पादक

# एक विचारणीय पत्र समाज के नाम

आत्मीयजन,

सादर जयजिनेन्द्र,

तीर्थराज सम्मोदशिखर के विषय में हम एक बहुत ही गंभीर बात आपके समक्ष विचार व समाधान हेतु प्रस्तुत कर रहे हैं। कृपया मनन करें, चिंतन करें।

**भाव सहित बन्दे जो कोई, ताको आवागमन न होई।**

ये पंक्तियाँ प्रत्येक जैन के हृदय में तरंगित होती हैं एवं हमारी संपूर्ण चेतना इन में श्रद्धा रखती है। जब हम अपने नेत्र बंद कर स्मरण करते हैं, तो सम्पूर्ण तीर्थराज हमारे मस्तिष्क पटल पर जीवंत हो जाता है, किन्तु इसके साथ ही जीवंत हो जाती हैं, वे विकृतियाँ, जो हमारे दुर्भाग्य से न सिर्फ पैदा हो गई हैं, बल्कि तेजी से विस्तार पा रही हैं।

हम जब पर्वतराज पर वंदना हेतु प्रस्थान करते हैं तो प्रारंभ से ही निम्न स्थितियों से रू-बरू होते हैं।

1. प्रत्येक 50 कदम पर झोपड़ियाँ बन गई हैं एवं उनमें निवास करनेवाले व्यक्ति प्रातः से ही अपने-अपने दरवाजे पर कटोरा रख भिक्षा हेतु याचना करते हैं। जैन समाज के सभी सदस्य परोपकार की भावना रखते हैं एवं यथासामर्थ्य उनको दान भी देते हैं। उन निवासियों में अण्डा, मांस और मदिरा का प्रचलन सामान्य सी बात है एवं वे वहाँ मुर्गियाँ, बकरियाँ आदि भी पाल रहे हैं।

हम दयावश उनकी मदद कर अनजाने में परोक्ष हिंसा एवं पर्वतराज की पवित्रता नष्ट करने में सहायक हो रहे हैं।

2. हम पर्वतराज की वंदना करने नंगे पैर जाते हैं, वह हमारे लिये सम्पूर्ण श्रद्धा का केन्द्र है, किन्तु पर्वतराज पर निवास करनेवाले पर्वतराज को मल-मूत्र से अपवित्र करते हैं।

3. वर्तमान में किसी भी नगर में अनधिकृत बननेवाली झुगियों को अतिक्रमण-मुक्त कराने में शासन भी असहाय होता है। पर्वतराज पर झोपड़ियाँ तेजी से बढ़ती जा रही हैं, क्या हम सक्षम हैं कि इन्हें हम वहाँ से हटा सकेंगे, जबकि हम जानते हैं कि हमें इस कार्य हेतु शासन से किसी भी प्रकार की सहायता प्राप्त नहीं होगी?

परिणामस्वरूप हम गिरनार जी क्षेत्र जैसा हश्र होने की प्रतीक्षा करते रहेंगे एवं भविष्य में वहाँ वंदना-पूजा-उपासना से वंचित हो जावेंगे और हम मात्र यही कह सकेंगे कि “कभी यहाँ हमारा तीर्थराज हुआ करता था”।

मनन कीजिये एवं संकल्प लीजिये कि हम वंदना के समय पर्वतराज पर रहनेवाले किसी भी व्यक्ति को दान नहीं देगे। हम उसकी सहायता पर्वतराज से स्थायी रूप से नीचे आने पर ही करेंगे।

हम वंदना के दौरान पर्वतराज पर स्थित दुकानों से कोई भी खाने-पीने की वस्तु (चाय, कोल्ड ड्रिंक, बिस्किट, पकोड़े, ककड़ी आदि) नहीं खरीदेंगे। उनकी आय के स्रोत उनके पर्वतराज से नीचे आने पर ही सुलभ करावेंगे।

हमारा संकल्प ही पर्वतराज की पवित्रता को बनाये रखेगा एवं उसे पिकनिक स्थल एवं मनोरंजन केन्द्र में परिणित नहीं होने देगा।

**मनन एवं संकल्प के निवेदन के साथ निवेदक**

अखिल भारतीय दिगम्बर जैन युवक-युवती परिचय सम्मेलन, भोपाल

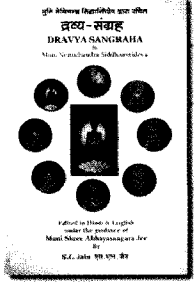
अखिल भारतीय पुलक जन चेतना मंच (रजि.) शाखा-भोपाल

श्री पार्श्वनाथ सेवा मण्डल, जवाहर चौक, भोपाल

श्री त्रिशला महिला मण्डल, टीन शेड, टी.टी. नगर, भोपाल

राष्ट्रीय जैन महिला जागृति मंच (रजि.) शाखा - भोपाल

## बृहद्द्रव्यसंग्रह की हिन्दी-अंग्रेजी टीका



सम्पादक : श्री एस. एल. जैन, भोपाल। प्रकाशक मैत्री-समूह। पृष्ठ xxiv+१९७ मूल्य रु. ६०/-

द्रव्यसंग्रह प्राकृतभाषा में रचित प्राचीनतम जैनदर्शन का प्रसिद्ध ग्रन्थ है, जिसमें छह द्रव्यों- जीव, अजीव, धर्म, अधर्म, आकाश और काल के स्वरूप और लक्षण के वर्णन के साथ निश्चय और व्यवहार मोक्षमार्ग, मोक्षप्राप्ति के उपायरूप ध्यान की उपादेयता, ध्यान करने योग्य मंत्र, पञ्चपरमेष्ठी के स्वरूप आदि का कुल अट्टावन गाथाओं में वर्णन है। इस ग्रन्थ की विस्तृत संस्कृत टीका श्री ब्रह्मदेवसूरी द्वारा लिखी गई है और उसके कई संस्करण प्रकाशित हैं। अन्य अनेक विद्वानों ने मराठी, हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में इस ग्रन्थ की टीकाएँ रची हैं। इस रचना की एक मात्र अंग्रेजी टीका सन् १९१७ में प्रो. शरच्चन्द्र घोषाल के द्वारा की गई है जिसके संस्करण आरा, दिल्ली और मुम्बई से प्रकाशित हुए हैं।

द्रव्यसंग्रह ग्रन्थ कई परीक्षालयों के पाठ्यक्रम में सम्मिलित है। इस ग्रन्थ की संस्कृतटीका में निश्चय और व्यवहार नयों के परिप्रेक्ष्य में विवेचन किया गया है। जैन और जैनेतर विद्यार्थियों को यह विवेचन समझ पाना कठिन होता है। अहिन्दी-भाषी विद्यार्थी द्रव्यसंग्रह का अध्ययन संस्कृत या अंग्रेजी भाषा के माध्यम से ही करते हैं। इसलिये यह आवश्यक है कि ग्रन्थ के मुख्य विषय का प्रस्तुतीकरण सरल अंग्रेजी भाषा में किया जाय। प्रस्तुत पुस्तक में मूल प्राकृत गाथा, प्रत्येक गाथा की संस्कृत छाया, गाथा का अंग्रेजी रूपान्तर, प्राकृत गाथा के प्रत्येक शब्द का अंग्रेजी भाषा में अर्थ, गाथा का हिन्दी और अंग्रेजी में अर्थ और हिन्दी और अंग्रेजी में सरलतम व्याख्या दी गई है। जहाँ जैनधर्म के पारभाषिक शब्दों का उपयोग आवश्यक हुआ है, वहाँ उनको स्पष्ट करने के लिये कोष्ठक में अंग्रेजी अर्थ देने का प्रयत्न किया है। शास्त्रीय और दुरूह प्रस्तुति से बचते हुए द्रव्यों की सुबोध भाषा में प्रस्तुति अत्यधिक सराहनीय और

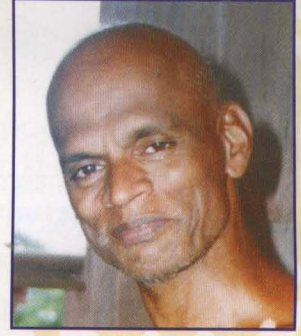
अनुकरणीय है। जैनधर्म और दर्शन का अध्ययन करने के लिए इच्छुक सम्पूर्ण विश्व के अध्येताओं और छात्रों के लिये यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी, ऐसी आशा है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इस पुस्तक की पच्चीसवीं गाथा की टीका करते हुए लेखक ने बताया है कि जैनदर्शन के अनुसार पुद्गलद्रव्य का अंतिम अविभागी भाग परमाणु कहलाता है। जैनदर्शन के इस परमाणु से आधुनिक परमाणु भिन्न है, क्योंकि जैनदर्शन के अनुसार परमाणु शुद्ध दशा में होने से इन्द्रियातीत है और आधुनिक प्रचलित परमाणु स्कंध है। वैज्ञानिकों द्वारा ब्रह्माण्ड की संरचना पर निरन्तर अनुसंधान किये जा रहे हैं। वे हाल ही में इस निष्कर्ष पर तो पहुँच गये हैं कि आधुनिक परमाणु अविभागी नहीं है और उसके बहुत खण्ड किये जा सकते हैं। यह निष्कर्ष इस ओर इंगित करता है कि आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधान परमाणु की संरचना को जैनदर्शन की मान्यतानुसार सिद्ध कर रहे हैं। यहाँ यह ध्यान रखना होगा कि जैनदर्शन के अनुसार एक पुद्गल परमाणु, शुद्ध दशा में जीव द्रव्य, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन्द्रियातीत हैं। इसलिये वैज्ञानिक अनुसंधान अविभागी पुद्गल द्रव्य की खोज नहीं कर सकेंगे। लेकिन फिर भी हमें इन निष्कर्षों पर सतत ध्यान रखना आवश्यक है, क्योंकि वे जैनदर्शन की मान्यताओं के करीब तो पहुँच ही सकते हैं।

सुन्दर छपाई, आकार एवं चित्रों ने इस पुस्तक को आधुनिकता, मनोज्ञता एवं शैक्षणिक जगत् में स्वीकार्यता प्रदान की है। इस कृत्य के लिये लेखक और प्रकाशक बधाई के पात्र हैं।

सुरेश जैन,  
आई.ए.एस. (सैवानिवृत्त)  
३०, निशात कॉलोनी,  
भोपाल म. प्र.

# मुनि श्री योगसागर जी की कविताएँ



## सच्चा आराधक

आराध्य की  
आराधना में  
आराधक  
ऐसा तन्मय होता है  
जैसे  
क्षीर में  
नीर मिलता है  
वह यह कभी  
आराध्य से  
कहता नहीं कि  
मैं आपके ही  
प्रति समर्पित हूँ।  
और  
आप में ही  
अटूट श्रद्धा है  
आराधक तो  
मधुमक्षिकाओं की  
भाँति होता है।  
आराध्य के  
चरण कमलों के  
भक्तिरस के  
पान में ही  
निमग्न रहता है।  
सच्चा समर्पित  
आराधक तो  
आराध्य से  
नाराज नहीं होता  
तथा  
आराधक को  
अपने अनुसार  
चलाने की  
चेष्टा नहीं करता।

## अपेक्षा और उपेक्षा

विगत के  
जीवन को  
अवगत करना है  
तो  
आगत कर्मों के  
उदय को जानो  
ज्ञात होता है कि  
जिसकी हम  
अपेक्षा करते हैं  
विगत में  
हमने ही  
उसकी उपेक्षा की है  
जिसकी हम  
उपेक्षा करते हैं  
विगत में  
हमने ही उसकी अपेक्षा की है।

## पुण्य नक्षत्र

जब पुण्य नक्षत्र का  
उदय होता है  
तो  
सभी नक्षत्र  
छत्र बनकर  
रक्षा करते हैं  
जब पाप  
नक्षत्र का  
उदय होता है  
तो  
सृष्टि के  
तमाम नक्षत्र  
शस्त्र बनकर  
जीवन पर  
सवार होते हैं।

प्रस्तुति : रतनचन्द्र जैन